अतीन्द्रिय लोक

गोविंद प्रसाद श्रीवास्तव

अतीन्द्रिय लोक

गोविंद प्रसाद श्रीवास्तव
(अवकाश-प्राप्त जिला जज)

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

ATĪNDRIYA LOKA

by

Govind Prasad Srivastava

ISBN : 978-81-7124-802-5

द्वितीय संस्करण : 2011 ई०

मूल्य : साठ रुपये (Rs. 60.00)

प्रकाशक

विश्वविद्यालय प्रकाशन

चौक, वाराणसी-221 001

फोन व फैक्स : (0542) 2413741, 2413082

E-mail : vvp@vsnl.com • sales@vvpbooks.com

Website : www.vvpbooks.com

मुद्रक

वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०

चौक, वाराणसी-221 001

उन पवित्र अदृश्य शक्तियों के चरणों में

सादर समर्पित

जिन्होंने अपनी अहेतुक कृपा से

संकटमय परिस्थितियों में मुझे मार्गदर्शन दिया,

मेरी रक्षा की!

भूमिका

सभ्यता के आदिकाल से ही मनुष्य सदा से मन में यह जिज्ञासा लिये रहा—'क्या इस संसार से पृथक कोई और भी संसार है? शरीर छूटने पर यह आत्मा किस लोक में जाती है? यदि पुनर्जन्म होता है तो पुनर्जन्म के पूर्व आत्मा का कहाँ और किस रूप में वास होता है? क्या प्रेत लोक करके कोई लोक है अथवा यह केवल मन का एक कल्पित भय है।' ये प्रश्न तब भी आदमी के मन में उठते थे और आज भी हमारे आपके मन में उठते हैं। कुछ लोगों ने अपने-अपने ढंग से इन प्रश्नों का समाधान ढूँढ़ा; किन्तु अधिकांश लोगों के लिये ये प्रश्न अनुत्तरित ही रह गये—समुचित समाधान नहीं मिल सका।

इन प्रश्नों के अतिरिक्त हम आप सबके जीवन में कई बार ऐसी घटनाएँ घटती हैं जिनका उत्तर बुद्धि की तुला पर नहीं दिया जा सकता। ऐसी घटनाओं को हम केवल मूक-दर्शक के रूप में देखते हैं और विस्मित होते हैं। हमारी इन्द्रियाँ जिसे प्रत्यक्ष रूप से देख रही हैं, सुन रही हैं और जिनका समाधान या उत्तर बुद्धि की कसौटी पर है—ऐसी सभी घटनाएँ—ऐसे सभी सुखद-दुःखद अनुभव अलौकिक कहे जायेंगे। इसका तात्पर्य यह हुआ कि ऐसी सभी घटनाएँ जिनको हमारी बुद्धि अपनी तुला पर उत्तरित नहीं कर सकती है कि ये घटनाएँ किस कारण से घटित हुईं वे अलौकिक घटनाएँ हैं। इनका कोई समाधान हमारे पास नहीं है या यों कहें कि वे हमारी इन्द्रियों के समझने की क्षमता से परे की घटनाएँ हैं। वे एक ऐसे लोक से जुड़ी प्रतीत होती हैं जहाँ हमारी बुद्धि संतोषजनक समाधान ढूँढ़ने में असमर्थ हो जाती है। इन्द्रियों द्वारा सन्तोषजनक ढंग से ऐसी घटनाओं का कोई हल मानव-मस्तिष्क को नहीं मिलता। इसलिये इस प्रकार की घटनाओं को हम 'अतीन्द्रिय लोक' से सम्बद्ध मानते हैं अर्थात् ऐसी विस्मित करने वाली घटनाएँ उस लोक से सम्बद्ध हैं जिसमें हमारी इन्द्रियों की पहुँच नहीं है। इन्द्रियों से इतर या परे होने के कारण वह अतीन्द्रिय लोक है।

ऐसी विस्मयकारी घटनाएँ व्यक्तिगत अनुभूति में भी आती हैं और कभी-कभी ऐसे विश्वस्त सूत्रों के माध्यम से भी आती हैं जिन पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। इन अलौकिक अनुभवों के साथ ही हम उन सिद्धि प्राप्त संतों को भी उसी वर्ग में रख सकते हैं जिनकी जीवनी और जीवन से जुड़ी घटनाएँ उस परम् सत्ता की दिव्य शक्ति में हमारी आस्था की पोषक हैं।

अध्यात्म जगत के इन प्रकाश-पुंजों पर अलग से प्रस्तुति करने का प्रयास करूँगा।

मैं विनम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहूँगा कि इस पुस्तक को लिखने का ध्येय आपका मनोरंजन नहीं है, बल्कि इस पुस्तक के लिखने के पीछे यह आशा है कि आपकी आध्यात्मिक जिज्ञासा जागृत होगी और अपने लिये इन पन्नों से कुछ न कुछ मार्गदर्शन के संकेत ढूँढ़ लेगी।

उस ईश्वरीय सत्ता के चरणों में शत-शत नमन करते हुए मैं आशा करता हूँ, इस पुस्तक के पृष्ठ आपको आध्यात्मिक उत्थान की दिशा में अग्रसर करेंगे।

3 जनवरी 2006 **गोविंद प्रसाद श्रीवास्तव**
'राजनंदन', सी०24/4, कबीरचौरा
वाराणसी

अनुक्रमणिका

*

देवी का वह रूप

कभी-कभी कुछ ऐसा घटित हो जाता है कि आदमी को उस पराशक्ति पर विश्वास करना ही पड़ता है । ऐसी ही एक घटना वर्ष 1973 के चैत्र मास की नवरात्रि में घटित हुई जब मैं अतिरिक्त सेशन जज के रूप में सीतापुर में सेवारत था । उस जमाने में मेरी बेटी विजय लक्ष्मी बी.ए. कक्षा में पढ़ती थी और उसकी सहपाठिनी थी—छाया मिश्रा ।

उन नवरात्रि के दिनों में सीतापुर में काफी शोर इस बात का मचा कि छाया अनवरत एक धर्मशाला के प्रांगण में देवी की पूजा कर रही है । वह न तो खाती है, न पीती है और होम करती हुई होमकुण्ड की आँच बराबर सह रही है । उसकी कक्षा की और उसके विद्यालय की लगभग सभी छात्राएँ छाया का दर्शन करने और यह करिश्मा देखने होम-स्थल तक अकेले या अपने-अपने अभिभावक के साथ गईं । मैंने विजय लक्ष्मी के अनुरोध पर कोई ध्यान नहीं दिया क्योंकि मुझे सहज रूप से ऐसी बात पर विश्वास नहीं हो पा रहा था । अंत में अष्टमी की तिथि आ पहुँची जब होम का समापन अपराह्न में होने को था । इतने दिनों, मिली सूचनाओं के अनुसार छाया ने केवल प्रतिदिन कुछ लौंग का सेवन किया और न अन्न खाया, न जल पीया ।

अंतिम दिन होने के कारण मेरी बेटी ने कुछ ज्यादा ही जिद पकड़ ली और मैं उसे लेकर धर्मशाला के प्रांगण में पहुँचा । शाम का समय था । होम का समापन हो चुका था और छाया धर्मशाला के एक कमरे में अपने माता-पिता के साथ थी । कुछ भक्त भी उस कमरे में उपस्थित थे । मेरे जाने पर वे भक्तजन कमरे के बाहर चले आये और कमरे में रह गयी छाया और उसके माता-पिता । छाया सामान्य अवस्था में थी । मुझे प्रणाम किया और विजय लक्ष्मी के साथ उसका पारस्परिक स्नेह-अभिवादन हुआ । छाया के पिता सीतापुर में सरकारी अफसर थे ।

मेरे भी घर में देवी-पूजा होती थी और मैं भी देवी-पूजा करता था । मेरे मन में उन दिनों बराबर यह इच्छा रहती थी कि देवी माँ के दर्शन हो जायें ।

हमलोग उसी कमरे में कुछ देर बैठे थे कि अचानक जैसे पूरा कमरा अंधेरे में ढँक गया । मुझे न कमरे मे छाया दिखी, न विजय लक्ष्मी, न छाया के माता-पिता । उस घोर अंधेरे के बीच देवी का दिव्य रूप सामने आया जिसे मैं कभी नहीं भूला । वह सिंहवाहिनी रूप नहीं था । अनन्त सौन्दर्य, अनन्त यौवन, अनन्त शालीनता से सम्पन्न वह देवी का ऐसा रूप था जो देवी की आयु का आभास युगों में दे रहा था ।

अर्थात् ऐसी अनन्त यौवना रूपसी जिसको देखकर लगता था कि आयु का माप वर्षों में नहीं, युगों में होगा। जिस रेशमी साड़ी को वे पहने हुए थीं, वह बहुत कुछ बनारसी सिल्क जैसी साड़ी थी जिस पर सुनहले और रूपहले जरी का काम था। किन्तु साड़ी महाराष्ट्री पद्धति से पहनी गई थी जैसी भरतनाट्यम् शैली में नृत्य के समय बालिकायें पहनती हैं। सिर के ऊपर स्वर्ण और रत्नों का गोल मुकुट था। गले में रत्नों की माला थी। हाथ सामान्य रूप से दो ही थे और उनमें कोई शस्त्र नहीं था।

देवी को इस रूप में केवल मैंने ही देखा और केवल मैंने ही यह अनुभूत किया था कि कमरे में घना अंधकार है और कमरे में कोई भी नहीं है, छाया भी नहीं। कमरे के उस अंधेरे के बीच देवी का वह अलौकिक देदीप्यमान रूप प्रकट हुआ था।

मुझे किसी भी प्रकार का भय नहीं लगा। माँ के सान्निध्य में भय कैसा ? मुझे यही याद है—भक्ति और स्नेह की भावना से अभिभूत मैं पूर्ण समर्पण की मुद्रा में देवी माँ को देख रहा था और उस समय मुझे इसका बिल्कुल ही होश नहीं था कि मैं छाया के कमरे में हूँ जहाँ उसके माता-पिता भी हैं और विजय लक्ष्मी भी मेरे साथ आयी है। केवल अंधेरा ही अंधेरा था जिसमें मुझे और कुछ भी नहीं दिखलाई पड़ता था सिवाय देवी के दिव्य स्वरूप के।

उस अतीन्द्रिय क्षण में, मैं देवी माँ से कुछ भी न बोल सका। देवी माँ ने मुझसे पूछा—"दर्शन करना चाहते थे ?" मैं माँ के रूप को देख रहा था और कुछ भी जवाब न दे सका।

माँ ने फिर पूछा—"दर्शन करना चाहते थे ?"

"हाँ ! माँ"—मैंने उत्तर दिया।

"दर्शन कर लिया ?"—माँ ने पूछा।

"हाँ माँ !"—मेरे मुँह से निकल गया।

इसके बाद वह देवी का देदीप्यमान रूप अदृश्य हो गया। फिर वही कमरा सामने आ गया जिसमें मैं बैठा था, विजय लक्ष्मी थी, छाया थी और छाया के माता-पिता थे।

मैंने छाया से अनुरोध किया कि वह कुछ देर के लिए मेरे निवास पर भी आये। छाया अपने माता-पिता के साथ मेरे साथ ही मेरे निवास पर आयी और अपने आप बिना किसी की मदद के पूजा के कमरे में जाकर देवीजी के चित्र के आगे पीठ कर आशीर्वाद की मुद्रा मे बैठ गयी। इसके पहले छाया मेरे यहाँ कभी नहीं आयी थी।

छाया के आने की खबर कॉलोनी में तेजी से फैली और लगभग सभी परिवार के लोग उसके दर्शन को आये। छाया ने कुछ फल ग्रहण किया। कुछ

फल प्रसाद के रूप में वितरित किया और फिर अपने माता-पिता के साथ अपने निवास को लौट गयी।

जीवन में निराशा या उदासी के क्षणों में आज भी देवी का वह रूप मन में आशा और विश्वास का संचार करता है, जैसे मुझसे कहता हो—"मैं हूँ न ! चिंतित क्यों होते हो ?"

गङ्गा का न्याय

दीवानी के मुकदमों में कभी-कभी ऐसा भी चरण आता है जब एक पक्ष मुकदमे की हार-जीत विपक्षी के ऊपर छोड़ देता है । यदि वह शपथ-विशेष (स्पेशल ओथ) पर कह दे कि उसकी बात सही है और शपथ-विशेष का प्रस्ताव रखने वाले की बात गलत है । यदि विपक्षी शपथ-विशेष पर अपनी बात कह देता है तो फिर न्यायालय उसी शपथ-विशेष के आलोक में, अपने निर्णय में शपथ-विशेष का उल्लेख करते हुए तदनुसार निर्णय पारित कर देता है । यह विधिक प्रक्रिया है जिसे कानून मान्यता देता है । पहले इस प्रकार के शपथ-विशेष के मामले कभी-कभी सुनाई पड़ते थे, अब तो शायद ही किसी वर्ष ये सुनाई पड़ते हों । इसका कारण यह भी हो सकता है कि शपथ-विशेष उठाने वाला व्यक्ति शायद नास्तिक हो गया है और उसे शपथ-विशेष उठाने में संकोच नहीं होता है । वह सोचता है, जो तत्काल लाभ मिल रहा है उसे उठा लिया जाये, गलत शपथ-विशेष का दण्ड तो शायद तब मिले जब ईश्वरीय सत्ता को अपने ढेर सारे काम से फुरसत मिलेगी । इसीलिए अब शपथ-विशेष प्रस्तावित करने वाला भी सावधान हो गया है—दस बार सोचता है और विपक्षी की धार्मिक वृत्ति का भी जायजा लेने के पश्चात् ही शपथ-विशेष की बात न्यायालय में रखता है । यह शपथ-विशेष अपनी बात को गंगा-जल हाथ में लेकर कहने या धार्मिक पुस्तक—जैसा रामायण, गीता को हाथ में लेकर अपनी बात कहने के रूप में हो सकती है जैसा प्रस्ताव रखने वाला पक्ष प्रस्तावित करे ।

वर्ष 1965 से 67 तक मैं बरेली में सिविल जज के रूप में कार्यरत था । खास बात यह है कि जिस मुकदमे का जिक्र करने जा रहा हूँ उसमें किसी पक्ष ने प्रतिपक्ष को शपथ-विशेष नहीं दिलायी थी, फिर भी शपथ-विशेष जैसी ही बात अनचाहे घटित हो गई । पहले थोड़ी कानून की बात आपसे कर लूँ । अगर आप किसी को कर्ज देते हैं तो रुक्का (प्रोनोट) और रसीद लिखा लेते हैं । फिर यदि निर्धारित अवधि के भीतर वह व्यक्ति कर्ज की राशि चुकता नहीं करता तो उस पर दीवानी न्यायालय में देय धनराशि का दावा समय-सीमा के भीतर चलाया जाता है जिसमें मौखिक साक्ष्य के अलावा अभिलेखीय साक्ष्य भी होता है । इन्हीं के आधार पर दोनों पक्षों के मामलों पर विचार कर और दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत गवाही का परीक्षण कर न्यायालय अपना निर्णय देता है कि क्या वादी का दावा डिक्री होने योग्य है या नहीं । प्रधान बात विश्वसनीयता की होती है अन्यथा फर्जी गवाहों और फर्जी प्रोनोट रसीद का बोलबाला होता ।

इसी तरह ऐसे भी अवसर आ सकते हैं जब बिना प्रोनोट रसीद के यक-ब-यक आवश्यकता पड़ने पर किसी को उसका मित्र कर्ज दे दे जिससे उसकी तत्काल की जरूरत पूरी हो सके । यह वहाँ सम्भव है जहाँ दोनों पक्षकारों के बीच गहरी विश्वसनीयता हो । ऐसे मामलों में यदि दूसरा पक्षकार बदनीयत हो जाये (क्योंकि प्रोनोट, रसीद नहीं लिखे गये हैं) और वादी को दावा लाना ही पड़ जाये तो वह दावा केवल इस आधार पर खारिज नहीं होगा कि प्रोनोट और रसीद नहीं लिखे गये हैं। किन्तु वाद के निर्णय में यह एक महत्वपूर्ण संगत तथ्य होगा कि यदि एक बड़ी धनराशि कर्ज में दी गई है तो प्रोनोट और रसीद क्यों नहीं लिखे गये अथवा कर्ज की स्वीकृति लिखित रूप से विपक्षी से वादी ने क्यों नहीं ली । यह विश्वसनीयता का पहलू है । न्यायालय यदि विश्वास करता है कि वादी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य विश्वसनीय है तो फिर इस आधार पर दावा खारिज नहीं होगा कि प्रोनोट और रसीद का होना अनिवार्य है । हाँ, इस आधार पर दावा खारिज भी हो सकता है कि वादी का दावा विश्वसनीय नहीं है क्योंकि स्वाभाविक आचरण यही होगा कि इतनी बड़ी धनराशि देते समय विपक्षी से प्रोनोट रसीद लिखवा ली जाये या कर्ज की बात लिखित रूप में विपक्षी से ले ली जाये । कर्ज में दी गई धनराशि की वसूली के दावे कर्ज की तिथि के तीन वर्ष के भीतर ही लाये जा सकते हैं अन्यथा वे काल-बाधित हो जाते हैं । इसलिए भी अभिलेखीय साक्ष्य आवश्यक हो जाता है जिससे वह तिथि अभिलेख पर रहे जिससे तीन वर्ष की संगणना की जा सके । जहाँ बिना किसी लिखा-पढ़ी के केवल आपसी सम्बन्ध के आधार पर एक पक्ष दूसरे पक्ष को कर्ज की धनराशि देता है, ऐसे कर्ज को 'दस्त-गर्दा' कर्ज कहते हैं । 'दस्त' का मतलब हाथ है । 'दस्तगर्दा' कर्ज का भी दावा न्यायालय 'डिक्री' कर सकता है यदि न्यायालय आश्वस्त हो कि वादी द्वारा प्रस्तुत दावा विश्वसनीय है और स्वीकार करने योग्य है।

ऐसा ही एक मामला मेरे सामने आया जब मैं बरेली में सिविल जज के रूप में कार्यरत था । वादी का कहना था कि प्रतिवादी की तात्कालिक पारिवारिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए वादी ने एक बहुत बड़ी धनराशि हाथों-हाथ अपनी तिजोरी से निकालकर प्रतिवादी को दे दी जिसके लिए प्रतिवादी ने निकट भविष्य में मय सूद के वापस करने का वादा किया था । वादी का कहना था कि प्रतिवादी से उसके ऐसे सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध नहीं थे जिनके आधार पर वह इतनी बड़ी राशि बिना लिखा-पढ़ी के दे देता, किन्तु प्रतिवादी अपने साथ जिस व्यक्ति को लाया था वह जनपद में अति सम्मानित व्यक्ति थे जो जीवन के वानप्रस्थ काल में सारा कारोबार छोड़, हरिद्वार में गंगा के तट पर बस गये थे । अत: उनकी मौजूदगी से किसी भी प्रकार की आशंका का प्रश्न ही नहीं उठता था ।

इस 'दस्तगर्दा' कर्ज के मुकदमें में दोनों पक्षकार गवाह थे और एक स्वतन्त्र गवाह के रूप में हरिद्वार में वानप्रस्थ जीवन व्यतीत कर रहे जनपद के वे सम्मानित

नागरिक थे जिनकी उपस्थिति से आश्वस्त वादी ने बिना किसी लिखा-पढ़ी के कर्ज की उतनी बड़ी धनराशि प्रतिवादी को दे दी इस, विश्वास से कि यह राशि मय सूद के कुछ ही दिनों में वादी को वापस हो जायेगी। वादी के अनुसार और कोई चौथा व्यक्ति मौजूद नहीं था।

गवाही शुरू हुई। वादी और प्रतिवादी दोनों ने शपथ पर अपना बयान दिया। शपथ के विरुद्ध शपथ पर परस्पर-विरोधी बयान थे। हर न्यायालय की कोशिश होती है कि विधि के दायरे के भीतर सही फैसला किया जाय। अत: हरिद्वार में वानप्रस्थ जीवन व्यतीत कर रहे उक्त नगर सेठ की गवाही मुझे आवश्यक लगी। वाद अगली तिथि के लिए स्थगित हो गया जिस तिथि के लिए उक्त तीसरे गवाह को न्यायालय द्वारा आहूत किया गया। न्यायालय के सम्मन का सम्मान करते हुए निर्धारित तिथि पर वे तीसरे गवाह न्यायालय में उपस्थित हुए। मेरे समक्ष उन्होंने शपथ पर बयान दिया कि कभी भी उनकी मौजूदगी में वादी ने प्रतिवादी को कोई कर्ज नहीं दिया। गवाही वादी के विरुद्ध गई। प्रतिवादी को हर्षित करने वाली यह गवाही थी क्योंकि वादी का बयान था कि इन्हीं गवाह की उपस्थिति के कारण आश्वस्त हो, बिना किसी लिखा-पढ़ी के वादी ने प्रतिवादी को यह भारी धनराशि कर्ज में दे दी।

अपनी गवाही देने के पश्चात् न जाने किस अज्ञात प्रेरणा से वे वानप्रस्थी गवाह मुझसे कह बैठे—'हुज़ूर ! वादी का दावा गलत है। मैंने सत्य बयान दिया है—भला इतना बड़ा कारोबार छोड़कर जो आदमी गङ्गा के तट पर जा बसा हो—वह आदमी कभी झूठ बोलेगा ?'

मैंने उनसे कहा—'न्यायालय किसी भी मुकदमे में निर्णय विधिक दायरे में मुकदमे के अभिलेख पर करती है। फिर न जाने कैसे मुँह से निकल गया (शायद इसलिए क्योंकि मेरा नगर भी गंगा-तट पर बसा है)—'मैं मुकदमे का निर्णय वाद के अभिलेख के अनुसार करूँगा पर आपने अपनी सत्यता के समर्थन में गंगाजी का हवाला दिया है इसलिए आपके कथन की सत्यता मैं गंगाजी पर छोड़ता हूँ। मुझे मौन रहना चाहिए था पर मेरे मुँह से यह बात निकल गई—न जाने किस अज्ञात प्रेरणा से। मुकदमे में छोटी-सी बहस हुई। जल्द ही फैसले की तारीख लगा दी गई। फैसले की तिथि पर सबेरे स्टेनो को निर्णय बोला। निर्णय यही था जो कोई भी न्यायालय देता। वादी का शपथ पर दिया गया बयान प्रतिवादी के शपथ पर दिये गये बयान से खण्डित था और एकमात्र साक्षी जिनकी उपस्थिति वादी मानता था—उन वानप्रस्थी गवाह ने वादी के बयान का समर्थन नहीं किया था। 'दस्तगर्दी' कर्ज के मुकदमे में किसी अभिलेखीय साक्ष्य का भी सवाल नहीं था। अत: दावा खारिज होने का निर्णय सुबह स्टेनों को बोल दिया। फिर अदालत जाने की तैयारी में लग गया। लगभग १० बजे न्यायालय का काम शुरू हो गया।

करीब ११ बजे प्रतिवादी के वकील न्यायालय में आये और मुझसे कहा—'क्या निर्णय हो गया ?' मैंने स्टेनो को बुलाया और छपा निर्णय माँगा। स्टेनों ने सूचित किया कि लगभग आधे घण्टे का समय और लगेगा।

करीब पौने बारह बजे टाइप किया हुआ निर्णय स्टेनो लेकर आया जिसे पढ़कर मैंने उसे हस्ताक्षरित किया। मुकदमे में आवाज लगी और लगभग बारह बजे दोनों पक्षों के वकील निर्णय जानने के लिए उपस्थित हुए। निर्णय पढ़ने के बाद प्रतिवादी के वकील ने मुझसे कहा—'अब निर्णय हो गया है इसलिए यह बात कह रहा हूँ। आज सबेरे लगभग नौ बजे हरिद्वार से सेठजी के घर फोन आया था। सेठ जी नियमानुसार आज भी भोर में गंगा-स्नान को गये थे। पता नहीं कैसे उनका पाँव फिसला और गंगा उन्हें बहा ले गईं।'

*

प्रज्ञा-चक्षु

देखने वाली दो आँखों के अतिरिक्त सभी व्यक्तियों को प्रकृति द्वारा प्रदत्त प्रज्ञा चक्षु का भी वरदान है । अब यह दूसरी बात है कि किसी में प्रज्ञा चक्षु अक्सर काम करता है और किसी में कभी-कभी । ऐसा लगता है कि यह अन्तर व्यक्ति के अपने रहन-सहन, अध्यात्म के प्रति लगाव और संस्कारों से नियमित है । अक्सर आपने अपने ही जीवन में देखा होगा कि आपके परिवार के किसी सदस्य ने या स्वयं आपने कभी कोई ऐसी बात कह दी जिसका कोई ज़ाहिरी आधार नहीं है और वह घटित हो गयी । सच पूछिए तो प्रज्ञाचक्षु में व्यक्ति कुछ अंतर्दृष्टि से देखकर नहीं बोलता बल्कि सहजरूप में अनायास ही उसकी वाणी से कोई ऐसी बात निकल जाती है जो भविष्य में सचमुच घटित होती है । शायद 'प्रज्ञावाणी' सही शब्द होगा । किन्तु प्रचलन में प्रज्ञा-चक्षु ही है, प्रज्ञावाणी नहीं । इसका कारण यह भी हो सकता है कि जिसने प्रज्ञावाणी सुनी उसे लगा कि बोलने वाले ने प्रज्ञाचक्षु से कोई बात देखी होगी तभी उसने वाणी से यह बात कही ।

भविष्य देखने वाला भविष्यद्रष्टा कहलाता है जो ऋषि-मुनियों से जुड़ी बात है । मुझे तो ऐसा लगता है कि प्रज्ञावाणी में न तो व्यक्ति कुछ देखकर बोलता है और न कोई भविष्यवाणी के रूप में ही कोई बात कहता है । अनायास ही किसी प्रसंग में उसके मुख से कोई बात निकल जाती है जो भविष्य में घटित होने वाली है । घटित होने पर सभी लोग अपनी अपनी बुद्धि से प्रज्ञावाणी का आधार ढूँढ़ते हैं और स्वयं बोलने वाला भी अपनी प्रज्ञावाणी पर चकित होता है । बोलने से पहले न उसने प्रज्ञाचक्षु से ऐसा कुछ देखा जिसको वह वाणी में बोल रहा है और न उसे किसी ज्योतिष विद्या का ज्ञान है । अनायास ही किसी प्रसंग में उसके मुख से कोई बात निकल गयी और घटित होकर सुननेवालों को और स्वयं वक्ता को चमत्कृत कर गई । प्रकृति ने जैसे बिना भेदभाव के सभी व्यक्तियों को इन्द्रियों की क्षमता दी है, हृदय का स्पंदन दिया है—उसी प्रकार कुछ प्राकृतिक शक्तियों से सबको सम्पन्न किया है । अब उन शक्तियों का विकास या ह्रास जिन कारणों से होता है उनमें से कुछ का संकेत ऊपर दिया गया है । विस्तार में जाने की जरूरत नहीं है ।

ऐसा ही एक घटना मेरे साथ तब घटी जब लगभग बत्तीस वर्ष पूर्व मैं विधान परिषद् के सचिव पद पर प्रतिनियुक्त था । मुझसे जुड़ी प्रज्ञा-चक्षु या प्रज्ञावाणी के कुछ प्रसंगो की चर्चा मेरे निकट के अधिकारी बन्धुजन के बीच हो चुकी थी । इसी से प्रेरित होकर तत्कालीन एक अति वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी मेरे पास आए ।

वह भी समझते थे कि मुझे प्रज्ञाचक्षु से शायद भविष्य को देखने का कोई वरदान प्रकृति से मिला है जिसे देखकर भविष्य की बात मुँह से निकलती है जो सही होती है । हकीकत में ऐसा कुछ भी नहीं था सिवाय इसके कि कभी-कभी अनायास ही किसी प्रसंग में कोई बात निकल गयी जिसके पीछे न तो कोई चिन्तन था न आधार किन्तु जो सत्य रूप से घटित हो गयी ।

मेरे वरिष्ठ आई०ए०एस० बन्धु (जिनका नाम लेना उचित नहीं होगा) की समस्या कन्या के विवाह से जुड़ी थी । पर यह समस्या दूसरे ही प्रकार की परेशानी लिये हुए थी । कन्या अत्यन्त शालीन, रूपवती और कुशाग्र बुद्धि की थी । पिता स्वयं बहुत बड़े ओहदे पर थे और परिवार, बिरादरी का बहुत नामी परिवार था । पिता के लिए बहुत बढ़िया शादी करना भी कोई समस्या नहीं थी । इसका भरपूर सामर्थ्य उनमें था । तब कन्या के लिए योग्य वर ढूँढ़ने में क्या परेशानी थी ?

परेशानी यह नहीं थी कि कोई योग्य वर मिल नहीं रहा था । परेशानी यह थी कि एक से एक बढ़कर सात-आठ घरानों सें लड़की का हाथ माँगा गया था । ये सभी घराने सम्पन्न और प्रतिष्ठित थे और इन सभी घरानों से सम्बद्ध लड़के अति विशिष्ट प्रशासनिक सेवाओं में थे । किसी प्रकार की माँग नहीं थी और कोई भी लड़का अत्यन्त योग्य वर के रूप में चयनित किया जा सकता था । मेरे आदरणीय बन्धु की समस्या थी—सभी तो एक से बढ़कर एक हैं । इनमें से किसको वर के रूप में कन्या के लिए चुना जाए । इसी में वे मेरी मदद चाहते थे । मैंने उनसे कहा, 'कल सुबह मैं आपके यहाँ आऊँगा और फिर वहीं बात होगी ।'

अगले रोज उन आदरणीय बंधु ने सबेरे ही सबेरे अपनी गाड़ी मेरे आवास पर भेज दी । नहा-धोकर, पूजा कर जब मैं खाली हुआ, गाड़ी से उनके आवास पर पहुँचा । वहाँ परिवार मेरी प्रतीक्षा कर रहा था । कन्या ने चरण-स्पर्श किया । उस पर एक नजर पड़ते ही मन कुछ कहने को हुआ । पर सावधानी की दृष्टि से पहले मैंने उस कन्या को घर के भीतर जाने को कहा और बात सुनने की चेष्टा न करने की हिदायत दी । मेरे आदरणीय बन्धु ने उन सभी सात-आठ प्रस्तावों को मेरे सामने रख दिया जिनमें स्वयं वर-पक्ष ने उस कन्या का हाथ माँगा था ।

बिना कुछ सोचे-विचारे मेरे मुँह से निकल गया—'इनमें से कोई भी लड़का आपकी कन्या का वर नहीं है । आपकी कन्या का वर तो विदेश में है । बहुत ही सम्पन्न परिवार है जो व्यापार करता है और कन्या का वर उसी व्यापार का महत्वपूर्ण भागीदार है ।'

'विदेश में किस देश में ?'—

मेरे आदरणीय बन्धु की पत्नी ने प्रश्न किया ।

बिना एक क्षण विचार किए, तत्काल मुँह से निकल गया—'अमेरिका ।'

मेरे आदरणीय बंधु और उनकी पत्नी ने एक-दूसरे का मुँह देखा और तब मेरे आदरणीय बंधु ने कहा—'हमारी दूर की रिश्तेदारी का एक ऐसा ही परिवार और ऐसा ही लड़का अमेरिका में है । पिछले साल वे लोग भारत आए थे, तब हमारे यहाँ भी आए थे । यहाँ से जाने के बाद उन्होंने अपने लड़के के लिए स्वयं विवाह का प्रस्ताव भेजा, पर हम लोगों ने उसे गंभीरता से नहीं लिया क्योंकि हाथ में देश के ही आई०ए०एस० लड़कों के अच्छे प्रपोज़ल (प्रस्ताव) थे । मैंने कहा—'आप लोग माता-पिता हैं । जो ठीक समझिए, करिए । पर मेरे मुख से लगता है कोई कुछ बोल गया है । मेरे अनुसार विवाह वहीं होगा, अन्यत्र नहीं ।'

उसी सप्ताह मेरे आदरणीय बंधु ने अपनी स्वीकृति विदेश में रहनेवाले परिवार को भेज दी फिर कुछ ही महीने बाद निर्धारित मंगलमय तिथि पर विवाह सम्पन्न हो गया । कन्या वर-पक्ष के साथ अमेरिका चली गयी ।

मेरे आदरणीय बंधु की वह अकेली कन्या थी और मुझे बार-बार यह बात कचोटती रही कि अगर मेरे मुख से यह प्रज्ञावाणी नहीं निकलती तो कन्या कम से कम भारत में तो रहती । जब चाहती, माता-पिता के पास आती । माता-पिता जब चाहते, कन्या के पास जाते । यह मेरी कैसी प्रज्ञावाणी निकली जिसने कन्या को माता-पिता से दूर सात समुंदर पार भेज दिया । फिर यह भी ख्याल आता था कि यह मेरी वाणी नहीं थी, यह तो प्रज्ञावाणी के रहस्यमय नियामक की वाणी थी । पर एक बात तो हुई । फिर इस प्रकार के अनुरोध मिलने पर मैं किसी न किसी बहाने अनुरोध को टाल देता था ।

*

प्रज्ञा-श्रवण

आपके भी जीवन में शायद ऐसा हुआ हो। लगा हो जैसे कान में कुछ ऐसा सुनाई पड़ा जिस पर ध्यान देने के कारण आप एक गम्भीर हादसे या नुकसान से बच गये। मुझे ऐसा लगता है कि आदमी का चेतन व्यक्तित्व इन्द्रियों से बँधा हुआ है और उसी के भीतर अपनी बौद्धिक क्षमता के अनुसार वह तर्क-वितर्क करता है—कोई कदम उठाता है। किन्तु मनुष्य के अवचेतन पर इन्द्रियों की सीमाओं का प्रतिबंध न होने के कारण, यह सूक्ष्म अवचेतन बहुत कुछ देख, सुन लेता है जो चेतन इन्द्रियों में बँधे होने के कारण देख, सुन नहीं पाता। और फिर जब अवचेतन के संज्ञान में कोई ऐसी बात देखने-सुनने में आती है जिस पर यदि तत्काल कार्रवाई चेतन शरीर ने नहीं की तो भारी हादसा या नुकसान हो सकता है—ऐसी दशा में अवचेतन की प्रज्ञा लहरी अपने ढंग से आदमी को आगाह या सावधान कर देती है। आदमी को लगता है कि कोई कान में बोलकर होने वाले या घटित होने जा रहे हादसे के प्रति उसे सावधान कर गया है। किस प्राकृतिक नियम से ऐसा होता है—यह तो ऊपर वाला जाने।

ऐसी ही एक घटना वर्ष 1981 में घटी जब मैं अतिरिक्त जिला जज के रूप में झाँसी में कार्यरत था। बुन्देलखण्ड एक्सप्रेस, बनारस और झाँसी को जोड़ने वाली सीधी रेलगाड़ी तब भी थी और आज भी है। इसी से दोपहर के लगभग एक बजे झाँसी के लिए बनारस से प्रस्थान करता था। यह ट्रेन लगभग 6 बजे इलाहाबाद पहुँचती थी जहाँ इंजन बदले जाने के कारण काफी देर रुकती थी। इस विराम में यात्री चाय-पानी करते थे और लम्बी यात्रा वाले हाथ-मुँह धोकर अपने साथ का लाया खाना खाते थे। गाड़ी फिर अगले रोज सुबह झाँसी पहुँचती थी।

जाड़े की शाम थी। अँधेरा घिर रहा था जब यह गाड़ी इलाहाबाद जंक्शन पर पहुँची। मेरी अटैची और बेडिंग ऊपरी बर्थ पर रखे हुए थे और इनके बगल में झोला था जिसमें खाने का सामान था। तय यही किया कि हाथ-मुँह धोकर खाना खा लिया जाये और फिर बर्थ पर बिस्तर बिछाकर सिरहाने तकिये के नीचे अटैची रखकर सोया जाये। तौलिया-साबुन लेकर कम्पार्टमेण्ट के बाथरूम में गया। जाने से पहले नीचे बैठे एक सज्जन से मैंने अनुरोध किया कि जरा मेरे सामान पर नजर रखियेगा। अटैची में वस्त्र और कुछ नकद के अलावा बहुत ज़रूरी कागजात भी थे।

मैं इसी अटैची को लेकर एक रोज पहले विन्ध्याचल देवी के दर्शन को गया था। वहाँ दर्शन के पश्चात् जो देवी की चुनरी मुझे प्रसाद में मिली उसे मैंने इस अटैची

के हैण्डिल में बाँध दिया था और वह इस यात्रा के समय भी अटैची के हैण्डल में बँधी हुई थी ।

बाथरूम में हाथ-मुँह धो ही रहा था कि कान में जैसे किसी ने फुसफुसाकर कहा—'अपना सामान देखो, अपना सामान देखो ।' मैं कुछ इत्मीनान से हाथ-मुँह धो रहा था क्योंकि सामान की निस्बत मैंने नीचे बर्थ पर बैठे एक सज्जन से अनुरोध कर रखा था कि वे सामान पर ध्यान रखें । अपने आस-आस किसी को न देखकर मैं पुन: इत्मीनान से हाथ-मुँह धोने लगा और तब फिर वही आवाज मेरे कान में सुनाई पड़ी—'अपना सामान देखो, अपना सामान देखो ।' इस बार आवाज में कुछ घबराहट भी थी ।

मैं तुरन्त बाथरूम के बाहर निकला और देखा कि मेरी जैसी ही अटैची कोई लेकर कम्पार्टमेण्ट के गेट से उतरने वाला है । मुझे लगा, मेरी अटैची का 'मॉडल' काफी 'पॉपुलर' है । तभी मैंने देखा कि इसके हैण्डिल पर वही देवी की चुनरी बँधी हुई है जो मुझे विन्ध्याचल में देवी के प्रसाद के रूप में मिली थी और जिसका काफी भाग इस समय अटैची लेकर उतरने वाले की हथेली से दबा हुआ था । मैंने तत्काल उनसे पूछा—'आप मेरी अटैची लेकर कहाँ जा रहे हैं ?'

चोर रँगे हाथ पकड़ा गया था । देखने में वह सज्जन मध्यवर्गीय, प्रौढ़ आयु के व्यक्ति थे । एक नजर मेरी ओर डाली, अटैची को नीचे रखा और मुझसे कहा—'यह अटैची लावारिस पड़ी हुई थी इसलिए मैं इसे लेकर रेलवे पुलिस के पास जा रहा था ।' वाक्य पूरा करते ही वे सज्जन फुर्ती से ट्रेन के बाहर हो गये । अटैची उठाकर मैंने इसे अपनी बर्थ पर रखा । मेरा बेडिंग और मेरा झोला अपनी जगह पर रखे मिले । जिन सज्जन को सामान देखने के लिए सहेजा था वे गर्दन झुकाये खाना खाते मिले । मैंने जब उनसे अटैची उठाये जाने की बात कही तो उन्होंने बड़े अन्यमनस्क भाव से कह दिया—"मैं गर्दन झुकाये खाना खा रहा था—हो सकता है मेरी नजर उधर न गई हो ।"

देवी माँ के श्री चरणों को मन ही मन प्रणाम कर मैंने बर्थ पर अपना बिस्तर बिछाया और सिरहाने अटैची रखी तथा चेन से अटैची को बर्थ के साथ ताला बंद कर दिया । राहत की साँस ली, खाना खाया और फिर एक अभूतपूर्व इत्मीनान के साथ विश्रामरत हुआ—बिना किसी अनुरोध के कोई रखवाला मेरी रखवाली कर रहा है ।

*

प्रज्ञा-वाणी

कभी-कभी ऐसा होता है कि बिना कुछ पूर्व विचार किये मुँह से कोई बात अनायास ही निकल जाती है जिसका कोई तार्किक आधार नहीं रहता। फिर मुँह से निकली उस बात पर आदमी खुद ही समझ नहीं पाता कि आखिर यह बात मुँह से कैसे निकल गयी और कैसे यह बिल्कुल सही बात थी। इस तरह की घटनाएँ कभी-कभी घटती हैं। लगभग हर आदमी के जीवन में इस प्रकार के प्रसंग आते हैं जबकि उसने स्वयं बिना सोचे-विचारे या बिना किसी तार्किक आधार के कोई बात कह दी जो बहुत सटीक निकली या किसी ने उसके सम्बन्ध में बिना किसी पूर्व आधार के अनायास ही कोई बात कह दी जिसको स्वीकार कर सुननेवाला व्यक्ति फायदे में तो रहा ही, चमत्कृत भी होता रहा कि आखिर यह बात इन्हें कैसे सूझी। ऐसी वाणी की पहचान के लिए मेरे पास केवल एक ही नाम है—'प्रज्ञावाणी'।

यह वाणी बिना किसी पूर्व धारणा के अनायास ही किसी प्रसंगवश मुँह से निकल आती है और उस पर सहज विश्वास करने वाला व्यक्ति कभी पछताता नहीं है। इसका कारण स्पष्ट है, तर्क पर आधारित कोई नतीजा जरूरी नहीं कि हमेशा सही निकले। किन्तु प्रज्ञा या 'इन्ट्यूशन' से अनायास ही मुँह से निकली बात तभी गलत हो सकती है जब उसे सोच-विचार कर कहा जा रहा हो जिस सूरत में वह प्रज्ञावाणी न होकर बौद्धिक विचार की अभिव्यक्ति है।

ऐसी ही एक घटना मेरे साथ वर्ष 1972-73 में हुई जब मैं सीतापुर में सत्र न्यायाधीश के रूप में कार्यरत था। सीतापुर में विश्वविख्यात नेत्र का अस्पताल है और इसके कुछ डॉक्टर अस्पताल के आरम्भिक काल से ही अस्पताल में सेवारत थे। मुझे यह उचित नहीं प्रतीत होता कि सम्बन्धित डॉक्टरों का नाम लूँ। शायद यह उनकी गरिमा के अनुकूल नहीं होगा। किन्तु जो लोग इस अस्पताल को निकट से देख चुके हैं वे इस बात की तस्दीक करेंगे कि यहाँ पर दो अत्यन्त वरिष्ठ नेत्र चिकित्सक अनेक वर्ष तक व्यक्तिगत कुण्ठाओं से ग्रस्त रहे। अस्पताल के निदेशक कभी एक चिकित्सक के कन्धे पर हाथ रख देते थे, कभी दूसरे चिकित्सक के। पर इससे दोनों चिकित्सकों के बीच की कुण्ठा कम नहीं हुई। अन्ततोगत्वा दोनों ही चिकित्सक अस्पताल दोड़कर अन्यत्र चले गये, पर दोनों के अस्पताल छोड़ने में कुछ अवधि का अंतर था। प्रस्तुत संस्मरण उन चिकित्सक को लेकर है जिन्होंने अस्पताल पहले छोड़ा।

सीतापुर में कुछ इस प्रकार की धारणा मेरे लिए बन गयी थी कि हाथ देखकर भविष्य की सही-सही बात जज साहब बतला देते हैं। वास्तव में हाथ देखना तो मात्र एक बाहरी आधार था। आंतरिक आधार प्रज्ञावाणी थी जो प्रश्न के सन्दर्भ में

कभी-कभी अनायास ही बिना किसी तार्किक आधार के मुँह से निकल जाती थी—अब यह दूसरी बात है कि शायद प्रज्ञावाणी को प्रेरणा हाथ देखने से मिल रही हो। मैं नहीं जानता कि इस प्रकार का हस्तरेखा विज्ञान भी है जो रेखाओं के सहारे भविष्य का रंगमंच देख सकता हो। मैं तो सिर्फ अपनी बात बतला रहा हूँ कि इन रेखाओं के सहारे कोई भविष्य की सिनेमा जैसी तस्वीर सामने नहीं आती थी। हाँ, इतना जरूर होता था कि पूछे गये प्रश्न से सम्बंधित उत्तर रेखाओं को देखते-देखते अनायास ही मुँह से निकल जाता था। उत्तर के कभी गलत होने का सवाल ही नहीं उठा क्योंकि बतलाई गई बात तर्क पर आधारित नहीं थी। सहज प्रज्ञा (इनटच्यूशन) से प्रेरित वाणी में उस गलती की कोई गुंजाइश ही नहीं थी जो तर्क से निकाले गये नतीजे में हो सकती है।

बात उन चिकित्सक की चल रही थी जिन्होंने अस्पताल को अपने प्रतिद्वंद्वी से पहले छोड़ा। वे मेरे पास सपत्नीक एक शाम आये। दोनों ने अपने मन की व्यथा कही। मुझसे यह नहीं पूछा कि क्या उन्हें अस्पताल छोड़ना चाहिए या नहीं। उनका प्रश्न केवल इतना ही था कि अब जब वे सीतापुर में और नहीं रह सकते, वे जानना चाहते हैं कि वे किस नगर में चले जाएँ जहाँ वे नए सिरे से अपने को स्थापित करें।

जैसा मैं कह चुका हूँ यह लगभग असम्भव बात है कि हाथ की रेखा देखकर यह बतलाया जाए कि आप यहाँ नौकरी छोड़कर किस नगर जा रहे हैं। यह भविष्यवाणी रेखाओं के आधार पर तो नहीं हो सकती। तार्किक आधार पर बतलाया गया स्थान माफ़िक बैठ भी सकता है, नहीं भी बैठ सकता है। फिलहाल मैंने उन लोगों को टाल दिया यह कहकर कि कल सुबह पूजा के पश्चात् मैं खुद आप लोगों के पास कचहरी जाने से पहले आऊँगा और कोशिश करूँगा कि आपके प्रश्न का उत्तर दे सकूँ। उन लोगों ने बातचीत में अपने से ही उत्तर प्रदेश के दो-चार शहरों के नाम बतलाये थे। मैंने उनसे अनुरोध किया कि इस प्रकार की कोई सूचना मुझे न दें जो मेरे मन में अवचेतन रूप से समा जाए।

अगले दिन सबेरे नहा-धोकर और पूजा करके मैं डॉक्टर दम्पति के घर गया जो निकट में ही स्थित था। डॉक्टर साहब और उनकी पत्नी ने अपने-अपने हाथ मेरे सामने खोल दिये जिससे उन दोनों की रेखाओं को मैं अच्छी तरह से देख सकूँ क्योंकि सवाल दोनों के ही भावी सुख-दुःख का था। दोनों ही हस्तरेखाओं पर सरसरी दृष्टि डालते हुए मैंने मन ही मन देवी माँ से प्रार्थना की कि मेरे मुँह से ऐसे ही नगर का नाम निकले जहाँ जाकर ये डॉक्टर दम्पति सुखी रहें। देवी माँ के श्रीचरणों में मैं ध्यानमग्न था, तभी न जाने किस क्षण, बिना सोचे-विचारे, बिना किसी आधार के अनायास ही मुँह से निकल गया—'आपलोग राजकोट जा रहे हैं।' राजकोट, जैसा आप जानते हैं गुजरात का नामी नगर है। उत्तर प्रदेश के किसी नगर का नाम मेरे मुँह से निकला होता तो मुझे इतना अफसोस नहीं होता जितना राजकोट का नाम मुँह से निकलने से हुआ। यह मुझसे क्या हो गया ? सीतापुर ने ही नहीं पूरे, उत्तर

प्रदेश ने एक बड़े ही कुशल नेत्र चिकित्सक को अपने आँचल से खो दिया। मन में यह भी आशंका होती थी कि डॉक्टर दम्पति दूसरे प्रदेश में कितने सुखी रहेंगे कितने दुःखी, यह तो समय ही बतलायेगा।

पर प्रज्ञावाणी में दुःख की गुंजाइश ही कहाँ ? डॉक्टर साहब की पैकिंग उसी रोज़ से शुरु हो गयी। कुछ गुजराती बन्धु हर वर्ष डॉक्टर साहब के नाम के कारण आँख की चिकित्सा के लिए सीतापुर आते थे। उनमें से एक आध के फोन नम्बर डॉक्टर साहब के पास थे। डॉक्टर साहब ने उनसे सम्पर्क किया और राजकोट में अपने सदा के लिए बसने की बात कही। उन गुजराती बन्धुओ के हर्ष का पारावार नहीं था। अब उन लोगों को राजकोट से सीतापुर नहीं जाना पड़ेगा। अब तो सीतापुर ही राजकोट आ रहा है।

कुछ सम्पन्न गुजराती बन्धुओं ने तत्काल एक गुजराती धर्मशाला को (जिसके वे ट्रस्टी थे) खाली करवाकर उसकी सफाई करवा दी। कुछ लाख रुपये अस्पताल के आवश्यक उपकरणों हेतु इकट्ठे कर लिए गये कि जब डॉक्टर साहब आयेंगे तो अपने विवेक से आवश्यक उपकरण खरीद् लें। तीन चौथाई धर्मशाला मरीज़ों की शैय्या से सुसज्जित कर दिया गया जिनमें अस्पताली चारपाई के अतिरिक्त नये बिस्तर और कंबल भी थे। एक चौथाई धर्मशाला में नीचे की मंजिल में परामर्श कक्ष और शल्य कक्ष की व्यवस्था की गयी और ऊपरी मंजिल में डाक्टर दम्पति के रहने की व्यवस्था की गयी। साथ ही डॉक्टर साहब को कोई आर्थिक समस्या न हो इसलिए उन सम्पन्न गुजराती बन्धुजन ने शायद एक लाख रुपये डॉक्टर साहब के आते ही उन्हें अर्पित किए जिससे वे अपनी आवश्यकतानुसार गृहस्थी का सामान खरीद सकें। डॉक्टर दम्पति के वेतन के प्रश्न पर धर्मशाला के ट्रस्ट द्वारा यह तय पाया गया कि सीतापुर के वेतनमान से यह किसी भी हालत में कम नहीं होगा। इसके अतिरिक्त प्राइवेट वार्ड के मरीजों से जो ऑपरेशन शुल्क लिया जायेगा उसका एक निश्चित प्रतिशत शल्य चिकित्सक के रूप में डॉक्टर साहब का होगा।

डॉक्टर साहब को राजकोट जाने का कभी कोई खेद नहीं हुआ और वे हमेशा आभार मानते थे कि उन्हें इसकी सही सलाह मैंने दी। अगले ही वर्ष मैं प्रतिनियुक्ति पर सचिव, विधान परिषद् उत्तर प्रदेश के रूप में लखनऊ आ गया। गांधीनगर में 'स्पीकर कान्फ्रेस' में मुझे भी जाने का अवसर मिला। गुजरात सरकार ने गुजरात पर्यटन का प्रोग्राम रखा था। डॉक्टर साहब राजकोट मार्ग पर सरकारी वाहन के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे और जैसे ही बस रुकी, वे बस में आकर मेरे गले लग गये। उनके आभार प्रकट करने का, धन्यवाद देने का कोई अन्त ही नहीं था। इसमें मेरा कोई भी योगदान नहीं था। प्रज्ञावाणी बुद्धि या तर्क से प्रेरित नहीं होती, वह तो एक सहज नैसर्गिक अवतरण है। किन दैवी नियमों से इसका अवतरण होता है इसका तो ज्ञान मनीषियों को हो सकता है। हमलोग तो केवल प्रज्ञावाणी पर चमत्कृत ही हो सकते हैं।

*

प्रज्ञा-आशीर्वाद

स्मृतियाँ धुँधली पड़ती जा रही हैं । जो घटना आपसे बतलाने जा रहा हूँ उसे लगता है मेरे अवचेतन मन ने जान-बूझकर विस्मृति के अंधेरे में डाल दिया था; शायद इसलिये कि इस घटना के उल्लेख को कहीं गलत न समझा जाये । यह भी हो सकता है कि इस घटना को आपके सामने प्रस्तुत करने में संकोच का होना अत्यंत स्वाभाविक है । फिर भी मुझे लगता है कि बात को छिपाकर रखने में एक महत्वपूर्ण आध्यात्मिक शोध का पहलू दबा का दबा ही रह जायेगा । यह भी मन में आता है कि हम और आप जिस क्षमता को नैसर्गिक रूप में ग्रहीत किये हुए हैं उसके प्रति हम उसी तरह से अबोध हैं जैसे खण्डहरनुमा मकान में रहने वाले सामान्य व्यक्ति को इसका बोध न हो कि घर के आँगन में मात्र दस फुट नीचे सोने के कलशों में अकूत धन-भण्डार है । ऐसी दशा में क्या उस व्यक्ति को इसकी जानकारी न देना उचित होगा, महज इस आधार पर कि कई लोग बात को अविश्वसनीय मानेंगे ?

आपने भी तुलसी की यह अमर पंक्ति पढ़ी होगी या सुनी होगी—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी

इसका सीधा-सादा अर्थ है कि यह जीव अथवा मानव वास्तव में ईश्वर का ही तो एक अंश है—उस आध्यात्मिक सागर के जल की एक बूँद है जो स्वयं ईश्वर का अंश होने के कारण ईश्वरमय है । अत: यह जीव अथवा आत्मा नष्ट नहीं होता—वह अविनाशी है । काया परिवर्तन भले ही शरीर के जीर्ण होने के कारण कर देता है । 'गीता' भी यही कहती है—'शरीर छूटने का दु:ख न कर, आत्मा ने केवल जीर्ण वस्त्र को बदल दिया है । यह आत्मा तो अविनाशी है ।' इसी अर्थ में यह बात कही गयी है कि ईश्वर का अंश जीव अविनाशी है क्योंकि वह जीव या आत्मा स्वयं ईश्वरमय है ।

जाहिर बात है कि यदि जीव ईश्वरीय है अथवा ईश्वर का अंश है तो वह स्वयं ईश्वरीय शक्ति से सराबोर ऐसे कार्य कर सकता है जिसके लिए यही कहा जायेगा कि यह ईश्वरीय चमत्कार है । वास्तव में जीव ने कोई चमत्कार नहीं किया । उसने सहज ढंग से ऐसा काम किया जो यदि प्रभु के हाथ से सम्पन्न होता तो उसे प्रभु का वरदान या आशीर्वाद के रूप में स्वीकार किया जाता है । प्रभु के हाथ घटित चमत्कार को प्रभु का आशीर्वाद माना जाता है यह बात हम पर, आप पर, सब पर लागू होती है क्योंकि हममें से हर एक जो जीव है वह ईश्वर का अंश होने के नाते ईश्वरमय है । ईश्वरीय नियमों के अधीन हम संसार में आते हैं, जीते हैं और चले जाते हैं । हममें से

हर एक, ईश्वर का अंश होने के कारण ईश्वरमय है किंतु इसका बोध हमें नहीं हो पाता या शायद कभी-कभी हो जाता है जिसे हम शीघ्र ही भूल जाते हैं ।

इस घटना को लिखते समय यही बात प्रधान रूप से उभर रही है कि आप यदि इस घटना की सत्यता पर विश्वास करेंगे तो अपको स्वयं अपनी ईश्वरीय क्षमता का बोध होगा जिसकी जानकारी प्रभु की कृपा से किसी ईश्वरीय क्षण में आपके आँसुओं को हर्ष की हँसी में बदल देगी—आपके ही हाथों ।

न्यायिक सेवा से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् उत्तर प्रदेश सरकार ने मुझे श्रम न्यायालय का कार्यभार सौंप दिया । इस सिलसिले में मेरी नियुक्ति श्रम न्यायालय, फैजाबाद के पीठासीन अधिकारी के रूप में हुई । मेरी नियुक्ति के पूर्व फैजाबाद में श्रम न्यायालय का सृजन नहीं हुआ था । इस तरह से फैजाबाद में मैं ही प्रथम श्रम न्यायालय के रूप में कार्यरत हुआ । निवास के लिए मुझे अधिकारी आवास (ऑफिसर हॉस्टल) का एक एक-कक्षीय फ्लैट आवंटित हुआ । परिवार मेरा बनारस में था और फैजाबाद के एक-कक्षीय फ्लैट में मैं अकेला रहता था । छुट्टियों में बनारस चला आता था ।

वहीं फैजाबाद में मेरी करीबी रिश्ते की एक छोटी बहन की ससुराल थी । अक्सर ही मैं उसके घर जाता था । सामाजिक मर्यादा के अनुरूप उसके यहाँ बराबर मिठाई लेकर जाता था । मैं अपनी बहन की ससुराल का एक सदस्य-सा हो गया । ससुराल में बहन के पति की एक वृद्धा बुआ भी थीं जो धर्म-परायण थीं—वैसे मेरी छोटी बहन सद्विचारों की और सद्आचरण की जीती-जागती तस्वीर थी । वर्ष 1992 में मैं श्रम न्यायालय के कार्यभार से मुक्त हुआ । तत्पश्चात् मेरी नियुक्ति जिला उपभोक्ता फोरम, वाराणसी के अध्यक्ष पद पर सरकार ने की । फैजाबाद में मेरी बहन की ससुराल के सदस्यों से इतने पारिवारिक सम्बन्ध बन गये थे कि हम एक-दूसरे का हाल-चाल बराबर लेते रहते थे ।

एक दिन बनारस में मुझे खबर मिली कि फैजाबाद वाली वृद्धा बुआजी (मेरी बहन के पति की बुआ) ने यह घोषित कर दिया है कि अमुक तिथि को उनका महाप्रयाण होगा—शरीर छूट जायेगा । दूर-दूर से उनके सम्बन्धी उस तिथि के एक-दो दिन पहले आये । मैं भी उसी तिथि को सुबह किसान एक्सप्रेस से फैजाबाद, दिन में लगभग 1 बजे पहुँचा । घर में रोने-पीटने का कोहराम मचा हुआ था । बुआजी का शरीर नाममात्र को जीवित था । प्राण किसी भी समय छूट सकते थे । आखिरी तैयारी के लिए भी कुछ लोगों को निर्देश दिये जा चुके थे । मेरी बहन के आँसू थमने का नाम नहीं लेते थे । उसका क्रंदन मुझे भी रुला रहा था और तभी न जाने किस दैवी क्षण में मैंने अपनी बहन को झकझोर कर कहा—'यह रोना-गाना क्या मचा रखा है ? बुआजी अभी नहीं जायेंगी । ख्वामखाह मुझे बनारस से आना पड़ा । पर खबर ही ऐसी थी कि मैं बिना मिठाई के आया' । फिर जेब से रुपये निकाल कर उसके

हाथ पर रखकर मैंने कहा—'इसकी मिठाई मँगाकर सबको खिलाओ और बतला दो कि ये मिठाई भैय्या ने सबको खिलाने को कहा है, बुआ अभी नहीं जा रही हैं ।'

मेरी निश्छल छोटी बहन मेरी बातों पर सहज विश्वास रखती थी । उसे तभी ध्यान आया कि फैजाबाद में ही उसकी ननद के परिवार की दो लड़कियों का विवाह अभी सम्पन्न नहीं हुआ है । वे दोनों ही लड़कियाँ बुआजी के बहुत निकट थीं और बुआजी की उत्कट इच्छा थी कि वे उन लड़कियों का विवाह देखें । मेरी बात सुनकर मेरी बहन ने सामान्य होकर यही बात मुझसे कह दी—'अगर बुआ को अभी नहीं जाना है तो मेरी ननद के परिवार की दोनों लड़कियों की शादी देखकर जायें ।' इन लड़कियों की शादी की केवल बात चल रही थी पर शादी कहीं तय नहीं हुई थी । अभी विवाह की तिथि के निर्धारित होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था पर झोंके से मेरे मुँह से निकल गया—'बुआ इन दोनों लड़कियों की शादी देखे बिना नहीं जायेंगी ।' और तब अपनी सहज आस्था के कारण मेरी बहन को एकबारगी यह भी ध्यान आया कि स्वयं उसकी बड़ी बेटी के विवाह की बात भी तो शीघ्र ही चलेगी । उसी भावावेश में वह अपनी बड़ी बेटी की शादी की बात कह बैठी । मुझसे कहा—'अगर बुआ उन दोनों शादियों को देखकर जायेंगी तो मेरी बेटी की शादी भी देखकर जायें । मैं जल्द से जल्द उसकी शादी करने की कोशिश करूँगी ।' और बिना इस पर विचार किये हुए कि यदि मेरी बात गलत हो गई तो मै उपहास का पात्र बनूँगा, मेरे मुँह से निकल गया—'बुआ बिना तुम्हारी बिटिया की शादी देखे नहीं जायेंगी ।'

तभी बुआ के मृतप्राय शरीर में कुछ स्पंदन देखा गया । बुआ ने लेटे ही लेटे करवट ली । होमियोपैथी की दवा चल रही थी । उसी दवा की एक मात्रा बुआ के मुँह में तत्काल डाली गई । कुछ देर बाद बुआ कुछ सामान्य स्थिति में देखी गईं । उन्हें तब कुछ फल का रस दिया गया । मैं शाम की गाड़ी से वापस बनारस चला आया ।

इस घटना के लगभग एक-डेढ़ वर्ष पश्चात् बुआजी का शरीर छूटा । इस अन्तराल में उन तीनों कन्याओं का विवाह सम्पन्न हुआ जिसे बुआजी ने अपनी आँखों से देखा । अंतिम विवाह मेरी बहन की बड़ी कन्या का था जिसमें मैं भी शरीक हुआ । मुझे ऐसा लगता है, तीन-तीन विवाह देखने के लिए बुआजी का जीवित रहना मात्र एक इत्तिफाक या संयोग नहीं कहा जा सकता । ईश्वर करुणा का सागर है । जीव उसी ईश्वर का अंश है । हम, आप सभी किसी परिस्थिति विशेष में जब करुणा की तरंगों में तरंगित होते हैं, उसी क्षण ईश्वरीय करुणा सागर से तादात्म्य स्थापित हो जाता है और आपके मुख से निकला आशीर्वाद उतने ही सहज रूप से फलीभूत होता है जैसे ईश्वरीय आशीर्वाद—क्योंकि हमारी और आप सभी की आत्मा ईश्वर का अंश होने के कारण ईश्वरमय है, अविनाशी है ।

*

दूर से आती घण्टे की ध्वनि

बात वर्ष 1973 की है । अगस्त उतर रहा था या सितंबर चढ़ रहा था । कृष्ण जन्माष्टमी का उत्सव अभी-अभी सम्पन्न हुआ था । मेरा स्थानान्तरण सीतापुर से लखनऊ हुआ था और तभी घर-भर की राय हुई कि सीतापुर छोड़ने से पहले नैमिषारण्य (नीमसार), ललितादेवी का दर्शन कर लिया जाय । जन्माष्टमी के कुछ ही दिनों के पश्चात नैमिषारण्य जाने का प्रोग्राम बन गया । एस०डी०एम०, मिसरिख ने अपनी जीप उपलब्ध करा दी और फिर सुबह लगभग 10-11 बजे मैं सपरिवार नैमिषारण्य के लिए जीप से चला । लगभग एक-डेढ़ घण्टे में नैमिषारण्य हम सब पहुँच गए । दर्शन-पूजा में लगभग एक बज गया । वापसी के पूर्व बच्चों ने हठ किया कि जिस वन या अरण्य के कारण इस स्थल का नाम नैमिषारण्य है उस स्थल में घूम लिया जाए ।

यह वनस्थली ललिता देवी के मंदिर से थोड़े ही फासले पर आरम्भ होती है । इसकी लम्बाई और चौड़ाई का सघन विस्तार है । उस समय एक ही प्रकार के वृक्ष सीमाबद्ध कतार में थोड़े-थोड़े फासले पर लगे हुए थे । घने तरुवर की छाया, उस दुपहरी में बड़ी सुखद प्रतीत होती थी । हमारी जीप इसी वन-सीमा के बाहर पक्की सड़क पर खड़ी थी । हम सब वन प्रदेश का आनन्द लेने के लिए अरण्य में चले गए । बच्चों को विशेष आनन्द आ रहा था और जिधर-जिधर वे दौड़ते थे, हम भी उसी ओर चलते जाते थे । मन में यह बात सहज रूप से थी—जब बच्चों का मन भर जाएगा, हम वापस सड़क की ओर जीप के लिए चल देंगे और फिर सीतापुर घण्टे-डेढ़ घण्टे में पहुँच जायेंगे ।

कुछ देर घूमने के बाद जब बच्चों को थकान महसूस हुई और थकान के साथ भूख-प्यास भी लगी तब हम अपनी समझ से सड़क की ओर मुड़े । काफी चलने के बाद भी सड़क का नामों निशान नहीं मिला । तब हमने जाना एक ही प्रकार के वृक्षों की घनी कतार की इस वनस्थली में हम रास्ता भूल गये हैं । बच्चे भूख और प्यास से बेहाल हो रहे थे । अब किस ओर चला जाए ? जाहिर बात थी कि जिस ओर हम लोग बढ़े थे, सही रास्ता नहीं था, केवल अंदाज़ से फिर दूसरी दिशा पकड़ी गई, इस आशा से कि कोई न कोई मिल जायेगा जो सड़क की दिशा बतला सकेगा, या कहीं न कहीं नलकूप या जलाशय मिल जायेगा जहाँ प्यास बुझाई जा सकेगी ।

हम भारी कदमों से बढ़े जा रहे थे । थकान के कारण चलने की गति भी धीमी थी । कुछ दूर चलने के बाद कोई कुआँ या पानी का नल तो नहीं मिला पर दूर से आती घण्टे की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी और फिर हम सब उसी ध्वनि का अनुसरण

करते उसी दिशा की ओर बढ़ने लगे। घण्टे की ध्वनि और तेज होती गयी। इस तरह एक भव्य मंदिर तक पहुँचे। पूछने पर पता चला यह स्वामी नारदानन्दजी का आश्रम है। मन्दिर की छत से किसी ने परिवार के साथ मुझे देखा। वह मुझे पहचानते थे। मंदिर की व्यवस्था से वे जुड़े अधिकारी थे। तुरन्त नीचे आए और सादर अनुरोध किया—'प्रभु के दर्शन कर प्रसाद ग्रहण करिए।' हम सब छत पर पहुँचे। वहाँ पंगत सजी हुई थी और पत्तलों पर भाँति-भाँति के व्यंजन परोसे जा रहे थे। ऊपर ही कृष्णजी का मंदिर था। ज्ञात हुआ आज कृष्णजी के जन्म के सन्दर्भ में 'छठी' का महोत्सव है। हाथ-मुँह धोकर प्रभु के दर्शन कर हम जैसे ही मंदिर के बाहर आए, पंगत में बैठने का सादर निमंत्रण व्यवस्थापकजी ने दिया।

हम सब पंगत में बैठ गए। एक से एक स्वादिष्ट व्यंजन तैयार किये गये थे। कृष्णजी के विशेष प्रसाद के रूप में दूध की खीर बनी थी। गाढ़े दूध और मेवे से बनी उस खीर का अद्‌भुत ही स्वाद था जो किसी बढ़िया से बढ़िया भोजनालय में भी खाने को नहीं मिला। हम सब प्रसाद ग्रहण कर तृप्त हुए और मन और तन को प्रचुर शांति मिली।

व्यवस्थापक के पूछने पर हमने उन्हें सूचित किया कि मनु और शतरूपा के समाधि-स्थल के निकट सड़क पर हमारी जीप खड़ी है। तुरन्त एक आदमी को साइकिल से जीप के लिए भेजा गया। लगभग 20-25 मिनट में जीप मंदिर के निकट वाली सड़क पर आ गयी। ड्राइवर के प्रसाद ग्रहण करने के पश्चात् हम सब सीतापुर के लिए रवाना हो गये।

कभी-कभी यह सोचकर मन काँप जाता है कि अगर मंदिर के घण्टे की ध्वनि का सहारा न मिला होता तो क्या परिणाम होता ? हम सब इस घटना को कृष्णजी की अपार दया मानते हैं। एक पूरक बात और कह दूँ। घर में हम सब जन्माष्टमी मनाते थे। इस घटना के बाद घर में कृष्णजी का 'छठी' का उत्सव भी नियम से सम्पन्न होने लगा।

एक बात तो कहना ही भूल गया। मंदिर से बिदा होते समय पुजारीजी को धन्यवाद देते हुए आभार प्रकट किया—'पूजा का घंटा अगर बीस-पच्चीस मिनट नहीं बजा होता तो हम लोग मंदिर तक पहुँच ही नहीं पाते। ईश्वर जाने, तब क्या हाल होता।

पुजारीजी ने अचम्भे से हम लोगों को देखा और फिर बोले—'मंदिर का घण्टा तो पाँच-सात मिनट के लिए सबेरे मंगला आरती के समय बजता है और शाम को शयन आरती के समय पाँच मिनट बजता है। सबेरे की मंगला आरती तो भोर में कब की हो गयी।'

*

कॉलबेल पर अदृश्य अंगुलियाँ

बात वर्ष 1966 के जाड़े की है जब मैं बरेली में सिविल जज के रूप में कार्यरत था। एक परिवारिक उत्सव के संदर्भ में बरेली से पत्नी और बच्चे पहले ही बनारस आ गये थे और मैं समारोह के एक दिन पूर्व बरेली से बनारस के लिए अकेले चला। उन दिनों भयंकर शीतलहर चल रही थी।

कबीरचौरा स्थित मेरे निवास में उस समय मकान के कम्पाउंड के दरवाजे पर कोई कॉलबेल नहीं थी। रात में बाहरी दरवाजे पर ताला लग जाता था। कॉलबेल कम्पाउण्ड के भीतर आवास के प्रवेश द्वार के बाहर लगी थी। अगर प्रवेश द्वार बंद रहता तब इसी कॉलबेल के बजाने से कोई भीतर से भीतरी द्वार का दरवाजा खोलता।

तब, ट्रेन बहुधा लेट चलती थी। उस रात पंजाब मेल मध्यरात्रि के लगभग 1 बजे पहुँची। रिक्शा करके घर लगभग डेढ़ बजे पहुँचा। मेरे साथ जाड़े के बिस्तरबन्द के अलावा, जाड़े के कपड़ों के भी एक-दो बक्से थे। सामान उतार कर रिक्शा वाला चला गया। सड़क पर घोर सन्नाटा था।

कम्पाउण्ड के फाटक पर मैंने बहुत आवाज़ लगाई। कम्पाउण्ड के बाहरी फाटक पर लगे ताले को बहुत खड़खड़ाया, किन्तु घर के लोग गहरी नींद में सोये हुए थे। घोर सर्दी के कारण शायद रजाई-कम्बल में दुबके हुए थे। बाहरी फाटक से घर के भीतरी कमरों के बीच में कुछ फासला भी था और बीच के सभी दरवाजे बंद थे। जाहिर बात थी, मेरी आवाज भीतर कोई भी नहीं सुन पा रहा था।

मेरे सामने समस्या थी कि अब क्या करूँ ? इतना सारा सामान उठाकर कहीं और जाना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात थी। सामान को बाहरी फाटक पर छोड़कर अकेले कहीं जाने में सामान के गायब हो जाने का स्वाभाविक खतरा था। मेरा मकान लबे सड़क स्थित है। ऐसे में किसी भी राह चलते की नजर फाटक के बाहर पड़े सामान पर निश्चित पड़ती।

फिर यही विकल्प था कि लाख सर्दी के बावजूद वहीं फाटक पर बैठकर ठिठरूँ जब तक सुबह न हो जाय। इस विकल्प में गंभीर रूप से अस्वस्थ हो जाने की पूरी सम्भावना थी जिससे मेरे लिए समारोह तो फीका पड़ता ही, परिवार के लोगों को भी अच्छी-खासी परेशानी उठानी पड़ती, पर और कोई चारा भी नहीं था।

जब यही अन्तिम विकल्प तय कर लिया और बक्सों को एक-दूसरे पर रखकर उन्हीं पर बैठने जा रहा था, तभी अचानक 'कॉलबेल' की घंटी लगातार घनघनाने लगी। यह तभी संभव था, जब भीतरी प्रवेश द्वार के बाहर लगी कॉलबेल के बटन

को कोई बराबर दबाए रखे । मुझे लगा गाँव से कोई आया है और उसे मालूम नहीं कि कॉलबेल हल्का-सा दबाकर छोड़ दिया जाता है । यह भी ख्याल आया कि यह आदमी कम्पाउण्ड के बाहरी फाटक पर मेरे पास मेरे आवाज देने पर क्यों नहीं आया। बाहर से एक-एक कर सारा सामान फाटक के ऊपर से भीतर पकड़ाया जा सकता था । 'कॉलबेल' की घंटी थी कि बज रही थी तो बजी चली जा रही थी, रुकने का नाम नहीं लेती थी ।

लगातार बजती कॉलबेल की घंटी की आवाज ने छोटे बच्चों को छोड़ घर के सभी लोगों को जगा दिया । निवास के भीतरी प्रवेश द्वार को अन्दर से खोलकर घर के लोग बाहर आए तो वहाँ 'कालबेल' दबानेवाला कोई नहीं दिखाई पड़ा । पर लगातार बजती हुई घंटी थी कि रुकने का नाम नहीं ले रही थी । मैंने फाटक के बाहर से पुनः आवाज लगाई । फाटक खुला । हम लोगों ने कंपाउण्ड की सारी लाइट जलाकर कर उस व्यक्ति की तलाश की जो घंटी बजाए चला जा रहा था पर कोई भी नहीं दिखाई पड़ा ।

बिजली के उस 'फेज़' के फ्यूज वाले तार के प्लग को निकालकर घंटी को मौन किया गया । अगले दिन बिजली के मैकेनिक ने परीक्षण कर बतलाया, 'कहीं कोई खराबी नहीं है' । हम लोगों ने भी कॉलबेल दबाकर देखा । बटन दबाने पर घंटी बजती थी और बटन छोड़ देने पर घंटी का बजना बंद हो जाता था । आखिर क्या रहस्य था, आज तक समझ में नहीं आया ।

*

एक कटी हरी पतंग

मुझे कभी-कभी ऐसा लगता है धर्म या मजहब का अलग-अलग दायरा आदमी ने बना रखा है । तदनुसार अपने-अपने धर्म या मजहब के लिए आदमी प्रचार और प्रसार करता है । धर्मान्धता में कभी-कभी धर्म या मजहब का कट्टरपंथी असहिष्णुता पर उतर आता है । कभी-कभी यह असहिष्णुता उग्र होकर हिंसा की ज्वाला में भड़क उठती है । किन्तु धर्म या मजहब के ऊपर अध्यात्म जगत् में इस प्रकार की कोई संकीर्णता नहीं है । वहाँ सभी कुछ एक है जैसे ईश्वर एक है—सदाचार का एक ही रूप है—समर्पण की भी एक ही दीवानगी है । इस बात की सत्यता वही जान सकता है जिसने इस अध्यात्म-रस को चखा हो ।

बरेली में वर्ष 1966-67 में मैं सिविल जज के पद पर कार्यरत था । न्यायालय के मुंसरिम एक मुस्लिम बंधु थे । वैसे तो वे अच्छी सेहत में दिखाई पड़ते थे—शांत प्रकृति के थे पर वे लँगड़ाकर चलते थे । मैंने इसे जन्मजात या बाल्यकाल से ही चली आ रही व्याधि समझकर कभी उनसे इसके बारे में कोई पूछताछ नहीं की । वे काम में कुशल थे और मेरे प्रति सम्मान और आस्था का भाव रखते थे जैसा कि उस समय न्यायालय के कर्मचारी न्यायालय के न्यायाधीश के प्रति सामान्यत: रखते थे । फिर एक दिन मालूम हुआ मुंसरिम साहब मेडिकल लीव (चिकित्सीय अवकाश) का प्रार्थनापत्र छोड़कर एक मास के लिए कानपुर चले गये हैं । पूछने पर पता चला, मुंसरिम साहब को किसी ने सलाह दी कि कानपुर में अमुक अस्पताल में कमर के ऑपरेशन से इस लँगड़ेपन को सदा के लिए दूर किया जा सकता है । इस राय को मानकर मुंसरिम साहब तत्काल बिना किसी अन्य की राय लिये ऑपरेशन करवाने कानपुर चले गये । फिर लगभग 15-20 दिनों बाद एक रविवार के दिन पता चला, मुंसरिम साहब का पार्थिव शरीर कानपुर से बरेली आ रहा है । ऑपरेशन के दौरान उनकी मृत्यु हो गई । पूछने पर पता चला कि शव लगभग सात बजे सायंकाल तक वाहन से बरेली पहुँच जोयगा ।

शाम के समय लगभग 5-6 बजे मैं निवास के बाहर बने पक्के चबूतरे पर बैठा था । चबूतरे के पास में छोटी सी लान थी जिसके बाद बँगले की चहारदीवारी थी । मेरा छोटा पुत्र आनन्द मेरे पास ही खेल रहा था तभी एक कटी हुई हरी पतंग हवा में तैरती हुई आयी और मेरे पैर पर गिर पड़ी । आनन्द 'गुड्डी-गुड्डी' कहता हुआ पतंग लेने को बढ़ा । तभी हवा का एक झोंका पतंग को लॉन की तरफ उड़ा ले गया । आनन्द लॉन की तरफ दौड़ा पर जब तक वह पतंग को पकड़ पाता, हवा का एक दूसरा झोंका पतंग को ऊपर की

ओर बहा ले गया और बाउंड्री-वॉल के ऊपर से पतंग बँगले के बाहर उड़ गई। रोते हुए आनन्द को चुप कराया—'दूसरी पतंग कल मँगवा देंगे'।

रात के लगभग 9 बजे पता चला, मुंसरिम साहब का शव उनके घर पहुँच चुका है। उनका घर बरेली के पुराने आवासीय इलाके में था। जिन्होंने सूचना दी उन्हीं के साथ मैं जनाजे में शरीक होने के लिए मुंसरिम साहब के घर पहुँचा। मुंसरिम साहब के घर पर कब्रिस्तान चलने की तैयारी हो चुकी थी। थोड़ी देर बाद जनाजा कब्रिस्तान जाने के लिए सड़क पर था। मैं भी शोकाकुल परिवार के सदस्यों के साथ भारी मन से चल रहा था। लगभग दस-साढ़े दस बजे रात में कब्रिस्तान में कपड़े में लिपटे शव को कब्र के गड्ढे में उतारा गया। हम सभी लोग मुट्ठी में मिट्टी लेकर शव के ऊपर डाल रहे थे। तभी न जाने कहाँ से वही कटी हरी पतंग कब्र के गड्ढे में पड़े मुंसरिम साहब के उस शव के ऊपर आकर गिर पड़ी। सब लोगों ने इस घटना को देखा और कई लोग कहते सुने गये—'पतंग कहाँ से आ गयी' 'पतंग कहाँ से आ गिरी'। पर तब तक कुछ लोगों के हाथों की फेंकी मिट्टी पतंग के ऊपर गिर चुकी थी। कब्र के गड्ढे में पतंग हटाने के लिए कोई उतरता भी तो कपड़े में ढँके शव पर पैर पड़ने की संभावना थी। इसलिए शव पर गिर पड़ी हरी पतंग से किसी ने छेड़छाड़ नहीं की और फेंकी जा रही मिट्टी के भार से वह कटी हरी पतंग दब गई। फिर उपस्थित लोगों ने इस पतंग की बात को महज एक इत्तिफाक मानकर और चर्चा नहीं की। पर मेरे लिए वह कटी हरी पतंग का शव के ऊपर गिरना महज़ एक इत्तिफाक की बात नहीं थी। मैं उस हरी पतंग को पहचानता था। यह वही हरी पतंग थी जो शाम को मेरे पैर पर गिर पड़ी थी—जिसको पकड़ने के लिए मेरा पुत्र आनन्द दौड़ा था और जिसको हवा का झोंका बँगले की चहारदीवारी के बाहर कहीं उड़ा ले गया था। मैंने पूरी घटना का यह अर्थ निकाला कि मुंसरिम साहब का मुझसे अनुरोध था—'मैं तो चला। मेरे परिवार का ख्याल रखियेगा'।

उस जमाने में बरेली में एक पुराना धर्मादा ट्रस्ट था (अब पता नहीं वह ट्रस्ट है कि नहीं)। सिविल जज, बरेली उस धर्मादा ट्रस्ट का पदेन अध्यक्ष होता था। उद्देश्य यही था—जो गरीब हैं, असहाय हैं, आर्थिक रूप से कमजोर हैं, उनकी ट्रस्ट की धनराशि से सहायता की जाए। ट्रस्ट के पास आर्थिक स्रोत के रूप में नियमित आने वाली कुछ किराये की राशि थी और कुछ बैंक से मिलने वाला सूद। इसी राशि से बिना जाति-धर्म का खयाल किये हुए असहाय की सहायता ट्रस्ट करता था। ट्रस्ट के संस्थापक ने दुरुपयोग की किसी संभावना को रोकने के विचार से पदेन सिविल-जज, बरेली को ट्रस्ट का अध्यक्ष बनाया था और अध्यक्ष के निर्देशानुसार ही विधवाओं और गरीब बच्चों की परवरिश आदि के लिए ट्रस्ट की ओर से व्यवस्था होती था। इस प्रकार अविवाहित गरीब कन्याओं की शादी, बच्चों की शिक्षा और विधवाओं के लिए निश्चित महीने-महीने एक धनराशि, ट्रस्ट की ओर से दी जाती

थी । इसका उपयोग मुंसरिम साहब के परिवार के लिए ट्रस्ट की ओर से किया गया। फिर कचहरी के अधिकारियों, अधिवक्ताओं और कर्मचारियों ने भी सहायता के रूप में जो धनराशि दी वह एक मुश्त होकर नियमित सूद वाली राशि बन गई । इस पूरी राशि को मुंसरिम साहब की विधवा को दे दिया गया । बरेली से वर्ष 1967 में मेरा स्थानान्तरण लखनऊ हुआ । बरेली में मेरे अधीन कार्यरत कर्मचारी कभी-कभी लखनऊ आने पर मुझसे मिलते थे । मुझे सूचित किया गया कि मुंसरिम साहब के परिवार की अब कोई आर्थिक समस्या नहीं है । सब काम सुचारु रूप से सम्पन्न हो रहा है ।

कभी-कभी जब मुंसरिम साहब के कानपुर जाकर ऑपरेशन कराने के आकस्मिक निर्णय की बात ध्यान में आती है तो बरबस ही मानस का यह दोहा मन में कौंध जाता है—

तुलसी जसि भवतव्यता तैसइ मिलइ सहाइ।
आपुनु आवइ ताहि पहिं ताहि तहाँ लै जाइ ।।

*

समानान्तर संसार

बहुत से लोग इस बात में विश्वास रखते हैं कि इसी लोक के समानांतर एक दूसरा लोक है जिसका भी अस्तित्व उतना ही वास्तविक है जितना हमारे इस लोक का। उस दूसरे लोक की कभी-कभी कोई झलक इस लोक में किसी रहने वाले को किसी अतीन्द्रिय क्षण में मिल जाती है। उस अतीन्द्रिय क्षण में इस लोक के दर्शक को यह आभास नहीं होता कि वह अपने संसार से भिन्न किसी संसार को देख रहा है। वह तो जैसे उस क्षण अपने ही संसार में बैठा अपने ही संसार की घटना को देख रहा है। उस क्षण वह एक प्रकार से उस अतीन्द्रिय मंच का एक पात्र बन जाता है जो मंच पर कोई अभिनय न करता हुआ मंच पर ही खड़े एक दर्शक के रूप में मंच पर घटित सब कुछ अपनी आँखों से देख रहा है। ठीक उसी तरह जैसे आप सड़क के किसी किनारे खड़े हों और सड़क पर से गुजर रहे किसी जुलूस को देख रहे हों। उस समय आप अपने ही संसार में अपनी ही आँखों के समक्ष घट रही घटना को देखते हैं। आप को भली-भाँति इस बात का बोध रहता है कि यह तो रोज की ही तरह एक सामान्य बात आपकी आँखों के सामने घटित हो रही है और यह कोई असामान्य बात नहीं है। किंतु जब आप जिस स्थल पर खड़े किसी गुजरी हुई घटना को देख रहे हैं, तब उस अतीन्द्रिय क्षण में आपको वह स्थान जहाँ पर आप दर्शक बने खड़े हैं, उस रूप में दिखलायी पड़ेगा, जिस रूप में घटित होते समय वह स्थान था। थोड़ी देर को ही किंतु सब कुछ वैसा ही वास्तविक प्रतीत होगा जैसा कि आज के किसी भी रोज की कोई भी घटना जिसे आप सड़क पर चलते देख रहे हैं या फिर मकान के बरामदे में कुर्सी पर बैठे आपको दिखलायी पड़ रही है। बाद में आपको बोध हो सकता है कि जो घटना आपने अतीन्द्रिय क्षण में देखी उसमें तो सामने सड़क के किनारे भवन की वह स्थिति नहीं थी जो इस समय है और तब आप विस्मित होकर अपने से ही पूछेंगे कि आखिर वह क्या था जो आपने देखा ?

आधुनिक अति संकीर्ण विज्ञान ऐसी स्थिति को 'हैलसिनेशन' (hallucination) या इल्यूज़न (illusion) अथवा भ्रमजन्य दर्शन मानता है। उसके पास सिवाय इस मान्यता के, समाधान हेतु कोई विकल्प भी तो नहीं है। अपने को 'विज्ञान' की अहंकारी संज्ञा देकर उन सभी बातों को विज्ञान अपने दायरे के बाहर कर देता है जिनके सम्बन्ध में उसके पास कोई समुचित समाधान नहीं है। किन्तु जो सत्य है वह किसी के प्रमाणन पर आश्रित नहीं है। सत्य तो सत्य ही है। हाँ, इतनी बात जरूर है कि किसी सत्य का विज्ञान के पास समाधान है और कोई-कोई सत्य विज्ञान की समझ के परे है जिसको छिपाने के लिए विज्ञान ने अनेक शब्द अपनाये हैं जिनमें

से एक शब्द है इंद्रिय भ्रम या 'हैलसिनेशन' अथवा इल्यूज़न । इसलिए अगर कोई इस बात को उठाता है कि चित्रकूट के घाट पर तुलसीदास को श्रीरघुवीर के दर्शन हुए अथवा मीरा के समक्ष उनके गिरधारी अपने मनोहारी रूप में प्रकट होते थे तो विज्ञानी इसे दृष्टिभ्रम मानते हुए तत्काल इस सत्य को असत्य घोषित कर देगा । अब इस हठधर्मिता का क्या जवाब है ? दृष्टिभ्रम भी मनोरोग में होता है । किन्तु स्वस्थ मस्तिष्क और मनवाला व्यक्ति किसी अतीन्द्रिय क्षण में—यदि कोई दर्शन कर रहा है चाहे वह मीरा को गिरधर का दर्शन हो या तुलसी को श्रीरघुवीर का—ऐसे दर्शन को दृष्टिभ्रम बतलाने वाले मनोवैज्ञानिक को, मनोचिकित्सक के पास जाने की सलाह देने का कौन साहस कर सकता है ?

और इसलिए ऐसे क्षणों की बात अभिलेख पर लाने में या किसी से कहने में स्वयं द्रष्टा भी संकोच करता है और प्रतिक्रिया के अज्ञात भय से भयभीत अपनी बात को अपने तक ही सीमित रखता है ।

न्यायिक सेवा के आरम्भिक वर्षों के दौरान मैं एक अति सम्मानित न्यायाधीश के सान्निध्य में आया जिनका एक पुत्र सैन्य सेवा में कम उम्र में ही वरिष्ठ पद पर था । वह सेना में 'मेजर' था । एक जीप दुर्घटना में उसकी मृत्यु हो गयी जब जीप खड्ड में गिर गयी । वह अभी अविवाहित था । माता-पिता पर जैसे वज्र टूट कर गिर पड़ा ।

न्यायाधीश महोदय के ही मुख से कही बात आप तक पहुँचा रहा हूँ । उनका कहना था कि मैंने तो मृतक पुत्र को कभी नहीं देखा किंतु मेरी पत्नी कभी-कभी मेरे पास आकर कहती थीं कि बच्चे से आप बात क्यों नहीं कर रहे हैं ? वह कब से आपकी पलंग के पास खड़ा है । न्यायाधीश महोदय की पत्नी बिलकुल स्वस्थ मस्तिष्क की थीं किन्तु जज साहब अपने निकट खड़े उस मृतक पुत्र को नहीं देख पाते थे जिसे माँ देख पाती थी । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे अतीन्द्रिय दर्शन के लिए दर्शक के व्यक्तित्व में कुछ नैसर्गिक विशिष्टता होती है । उस नैसर्गिक विशिष्टता से वंचित व्यक्ति ऐसे दर्शन से वंचित रहता है जैसे प्लास्टिक का चौकोर बॉक्स रेडियो का काम नहीं कर सकता जब तक उसके अन्दर रेडियो यन्त्र का उपकरण न हो । ज्यादा संभावना इसी बात की रहती है कि स्वयं ऐसा अतीन्द्रिय दर्शन न कर पाने के कारण वह किसी अन्य द्वारा देखे जा रहे किसी अतीन्द्रिय दर्शन को उस अन्य व्यक्ति का दृष्टिभ्रम बतलाये ।

उसी मृतक 'मेजर' के एक भाई भारतीय रेलसेवा में इंजीनियर थे । उन्हें भी पराविज्ञान में रुचि थी । इस सिलसिले में उन्होंने विशेष रूप से एक 'प्लैनचेट' को निर्मित किया जिससे वे किसी दिवंगत आत्मा से बात कर सकें । 'प्लैनचेट' के बारे में आपमें से अनेक लोग जानकारी रखते होंगे । यह लकड़ी का एक त्रिभुजात्मक बोर्ड होता है जो लम्बाई-चौड़ाई में इतना बड़ा होता है कि कोई व्यक्ति अपनी दोनों

हथेली उस बोर्ड पर रख सके। इस त्रिकोणात्मक बोर्ड के ऊपरी सिरे पर एक पेंसिल लगा दी जाती है जैसे बच्चों के ज्योमेट्री बॉक्स के परकाल में पेंसिल कस दी जाती है। त्रिकोणरूपी बोर्ड के नीचे दोनों छोर पर घूमने वाले छोटे पहिये लगा दिये जाते हैं जैसे बच्चों के खिलौने की मोटर में आपने लगे हुए देखे होंगे। इस प्लैनचेट को टेबल पर बिछे सफेद कागज की शीट पर रखा जाता है। प्लैनचेट चलाने वाला अपनी दोनों हथेली बोर्ड पर रखकर उस दिवंगत आत्मा का मानसिक आह्वान करता है जिससे वह बात करना चाहता है। दिवंगत आत्मा के आने पर पेंसिल स्वतः चलने लगती है और नीचे बिछे पन्ने पर पंक्ति दर पंक्ति वह निमंत्रित आत्मा अपनी बात कहती है या पूछे प्रश्न का उत्तर देती है। लेख पहचानने वाला यह भी देख सकता है कि लेख की लिपि लगभग वैसी ही है जैसी कि दिवंगत लिखा करता था—थोड़ा अंतर होना तो स्वाभाविक है। आधुनिक परामनोविज्ञान इस प्लैनचेट के लेख को उस व्यक्ति के अवचेतन मन की उपज मानता है जो व्यक्ति प्लैनचेट पर काम कर रहा है। इसके अलावा विज्ञान और कह भी क्या सकता है?

मृतक मेजर के भाई स्वयं कुशल इंजीनियर थे। उन्होंने मुझे बताया कि पहियों में बाल-बेयरिंग की व्यवस्था करके उन्होंने कुछ तेजगति से चलने वाले प्लैनचेट को निर्मित किया और उस पर दिवंगत भाई की आत्मा का आह्वान उसकी मृत्यु के कुछ दिनों के पश्चात् किया जब उनका प्लैनचेट बनकर तैयार हो गया।

उनके दिवंगत भाई प्लैनचेट के माध्यम से आए। इंजीनियर साहब को दिवंगत ने सूचित किया कि वह बहुत बेचैन हैं और वापस आना चाहते हैं।

उनसे इंजीनियर भाई ने पूछा—'इस समय आप कहाँ हैं और दिनभर क्या करते हैं?'

प्लैनचेट पर जो उत्तर आया वह चौंकाने वाला था। दिवंगत ने सूचित किया कि वह इस समय गया में है। वहाँ एक विशाल वृक्ष है। उस वृक्ष पर उनके जैसे अनेक लोग वास करते हैं। इन सभी दिवंगत लोगों के लिए एक गुरु नियुक्त हैं जो निर्धारित समय पर आते हैं और इन लोगों से ज्ञान और सांत्वना की बातें करते हैं। अधिकतर बातें इसी प्रकार की होती हैं कि जिन लोगों के लिए तुम शोक कर रहे हो उनका भी शरीर इसी तरह से कभी न कभी छूट जायेगा। संसार में कुछ स्थिर नहीं है, सभी नश्वर है।

कुछ दिनों पश्चात् प्लैनचेट पर बुलाने पर भी दिवंगत मेजर साहब नहीं आए। इसके अनेक कारण हो सकते हैं। शायद प्लैनचेट पर जाने से उन्हें निषिद्ध कर दिया गया हो क्योंकि जब तक किसी भी माध्यम से अपने सगे-सम्बन्धियों से दिवंगत आत्मा जुड़ी रहेगी, बिछुड़ने का परिताप आत्मा को संतप्त करता रहेगा। यह भी

कारण हो सकता है कि आत्मा ने पुनर्जन्म हेतु किसी कोख में अपना स्थान बना लिया हो । अब तो इंजीनियर साहब को भी गुजरे एक अरसा हो गया ।

मेरे सम्मानित न्यायाधीश जॉर्ज टाउन, इलाहाबाद में रहते थे । उनका बँगला पुराने ढंग का था जिसके विशाल कमरे उसी तरह के थे जैसे पुराने ढंग के बंगले में होते थे । अक्सर वह मौसम के प्रतिकूल न होने पर बाहरी बरामदे में आराम कुर्सी पर बैठते थे । सामने की कुर्सियाँ आगंतुकों के लिए पड़ी रहती थीं । इस बँगले में मैं जब भी अवसर मिलता, आदरणीय जज साहब के पास जाता था । उनका मुझे सहज आशीर्वाद प्राप्त था ।

एक बार मैं जब उनके निवास पर गया तो देखा उनके बरामदे से सटे पीछे के एक छोटे कमरे का दरवाजा बाहर की ओर खुला हुआ है । इस छोटे कमरे की ओर पहले कभी ध्यान नहीं गया था । मैंने देखा कमरे में एक वृद्ध तानपुरा लिये कोई भजन गा रहे हैं और उनकी बगल में उनकी सहधर्मिणी दीवाल की टेक लगाये बैठी हैं । दोनों ही सफेद उजले वस्त्र में थे । मुझे लगा कि इन लोगों को तो पहले कभी देखा नहीं । शायद ये लोग जज साहब के माता-पिता हैं अथवा निकट के सम्बन्धी हैं जो दूर पैतृक निवास से जज साहब के पास आए हैं । मैं जज साहब के पास प्रणाम करके बैठ गया । उस समय जज साहब के पास दो-चार और मिलने वाले भी बैठे थे । उनके समक्ष मैंने उस वृद्ध दम्पति के बारे में कोई पूछताछ नहीं की ।

फिर कुछ महीनों पश्चात् मैं जब दुबारा जज साहब के घर गया तब मुझे न तो पीछे के कमरे का खुला दरवाजा दिखाई पड़ा और न उस वृद्ध दम्पति के दर्शन हुए ।

बैठते ही मैंने जज साहब से पूछा—'वह जो वृद्ध दम्पति इस बरामदे के पीछे वाले कमरे में ठहरे थे—क्या वे चले गये ?'

मेरा प्रश्न सुनकर जज साहब कुछ विस्मित हुए और मुझसे पूछा—'कौन सा पिछला कमरा ? इस बरामदे से तो दरवाजा सीधे भीतर ड्राइंग रूम में खुलता है ।'

मैंने जब उनसे वह सब बतलाया जो मैंने पिछली बार देखा था तब जज साहब मेरे साथ उठकर बरामदे से कम्पाउण्ड में उतरे और मुझे ले जाकर दिखलाया कि बरामदे के पीछे तो ऐसा कोई छोटा कमरा नहीं है जिसका दरवाजा बाहरी ओर खुलता हो । हमलोग फिर आकर बरामदे में बैठ गये । इतने में जज साहब से मिलने वाले उनके एक सम्बन्धी मित्र आ गये । जज साहब ने उनसे मेरी बात बतलायी । जज साहब के मित्र का कहना था कि किसी बीते हुए वर्ष में इस मकान के बरामदे के पीछे ऐसा छोटा कमरा रहा होगा जिसका दरवाजा बाहरी तरफ खुलता था । इसी कमरे को उस समय के भवन स्वामी ने उन वृद्ध दम्पति को निवास के लिए दे दिया होगा, जिसमें वे रहकर भजन-संध्या करते थे । मुमकिन है वे उस समय के भवन-स्वामी के माता-पिता हों । कालांतर में उनके शरीर छूट जाने पर वह छोटा कमरा

भी इस ड्राइंग रूम का भाग बन गया और उस छोटे कमरे का बाहरी दरवाजा बंद कर दिया गया। जज साहब के मित्र के अनुसार उसी बीते समय की एक झलक मेरे सामने आई थी जिसको मैंने उस रूप में देखा था। न तो जज साहब ने, न उनके मित्र ने। मैंने जो कुछ देखा था उस पर अविश्वास किया और न उसे दृष्टिभ्रम बतलाया।

वैज्ञानिकों की हठधर्मिता पर मुझे ग़ालिब की यह पंक्ति याद आती है—

या रब ! न वो समझे हैं, न समझेंगे मेरी बात
दे और दिल उनको, जो न दे मुझको ज़बाँ और ।

ऐ खुदा ! मेरी प्रियतमा ने न तो मेरी बात कभी समझी है और न समझेगी। मेरी वाणी को और सामर्थ्य दे ताकि मैं उसे अपनी बात समझा सकूँ और यदि यह न संभव हो तो फिर उसी के हृदय को और उदार बना जिससे वह मेरी बात समझ सके।

*

मनचाहा स्वर्ण

वर्ष 1960 से 1963 तक मैं मुंसिफ के रूप में इलाहाबाद में कार्यरत था। मेरे ही क्या, मेरे जैसे अनेक लोगों के मन पर पं० जवाहरलाल नेहरू विद्यार्थी-जीवन से ही छाए हुए थे। वर्ष 1947 में देश को आजादी मिल चुकी थी और पं० जवाहरलाल नेहरू देश में अपर्याप्त 'फॉरेन एक्सचेंज' (स्वर्ण-भण्डार) को लेकर बहुत चिंतित रहते थे। अक्सर ही उनका वक्तव्य इस संदर्भ में अखबारों में और भाषणों में पढ़ने-सुनने को मिलता था।

काशी हिंदू विश्वविद्यालय के श्री विश्वनाथ मंदिर में आज भी संगमरमर पर खुदा एक शिलालेख ऊपरी मंजिल पर भगवती की मूर्ति के निकट वाले स्तंभ पर अंकित है। इस शिलालेख को इसलिए लगाया गया जिससे इसका अभिलेख रहे कि बीसवीं सदी में भी रासायनिक प्रक्रिया से शुद्ध स्वर्ण निर्मित किया जा सकता है। साक्षी के रूप में जिन लोगों का नाम उद्धृत है उनमें श्री महादेव देसाई (गांधीजी के सचिव) का भी नाम है। यह भी अंकित है कि निर्मित शुद्ध स्वर्ण को बाजार मूल्य पर बेचा गया और सारा पैसा जनहित का कार्य करने वाली एक संस्था को दान कर दिया गया।

मेरे मन में यह भावना गहराई से उतरती जा रही थी कि आखिर जब इच्छित स्वर्ण निर्मित किया जा सकता है तो यह विद्या क्यों न सीख ली जाए और पं० नेहरू की चिंता को दूर करने के लिए जितना स्वर्ण आवश्यक हो, निर्मित कर, घोर सुरक्षा में पण्डितजी के तीन मूर्ति निवास, नई दिल्ली पर शुभकामनाओं के साथ भेज दिया जाए। किन्तु अनेक शोध-ग्रंथों के अध्ययन के उपरांत भी मुझे वह रहस्य हाथ नहीं लगा। पंडितजी के दुःख में मैं भी दुःखी रहने लगा।

और तभी किसी रविवार को अपराह्न में एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति ने दरवाजे पर दस्तक दी। चपरासी जा चुका था। मैंने दरवाजा खोला। सामने जो व्यक्ति खड़ा था वह बहुत पढ़ा-लिखा नहीं लगता था। घुटने तक की धोती पहने था। कुर्ता और उसके ऊपर मिरजई जैसी सदरी पहने था। पाँव में साधारण जूता था। देखने पर यही लगता था कि इसका कोई मुकदमा होगा जिसके संदर्भ में यह मुझसे मिलने आया है।

छूटते ही मैंने कहा—'आपको जो कुछ कहना हो, खुली अदालत में कल कहिए। घर पर आपका आना सर्वथा अनुचित है।' और उस व्यक्ति ने मुझसे कहा—'मेरा कोई मुकदमा किसी अदालत में नहीं चल रहा है। आप शायद मन के अनुसार

सोना पाने की विधि न जान पाने के कारण परेशान हैं । मुझे आपके पास धनदा यक्षिणी ने भेजा है ।'

उनकी बात का असर मुझ पर हुआ । मैं उन्हें सम्मानपूर्वक ड्राइंग रूम में ले गया, सोफे पर उन्हें बैठाया । कुछ मिठाई और जल भीतर से ले आया जिसे उन्होंने स्वीकार किया । फिर हम लोगों की बात आरंभ हुई । आगंतुक ने कहा—'बहुत ही आसान और सहज तरीका है । बीज अक्षरों का जो मंत्र है उसमें बारह अक्षर भी नहीं आते । उस मंत्र को आप तत्काल मेरे ही सामने बड़ी आसानी से रट लेंगे । फिर इस मंत्र का आप सात बार जाप करेंगे, जिसमें मुश्किल से दो मिनट लगेगा । मन में जितने स्वर्ण की आपने कल्पना की है वह स्वर्ण तत्काल आपके आसन के सामने बिखर जाएगा । यह कोई इन्द्रजाल नहीं है । शुद्ध स्वर्ण ही आकर गिरेगा । इसमें डरने की भी कोई बात नहीं है ।'

मेरी मनचाही मुराद पूरी हुई । अत्यन्त विनय से मैंने मंत्र सिखलाने का अनुरोध किया ।

आगंतुक ने कहा—'मंत्र सीखने के पूर्व दो छोटी-सी शर्तों का अनुपालन आपको करना होगा तभी मंत्र आप सीख सकेंगे और मंत्र प्रभावी होगा । पहली शर्त यह है कि किसी इत्र-भरे रूई के फाहे के भीतर बहुत जरा-सी विष्ठा लगाकर आपको बराबर अपने कान में खोंस कर रखना होगा ।' बतलायी हुई यह शर्त यद्यपि मन में जुगुप्सा का भाव उत्पन्न करती थी किन्तु परिणाम को सोचकर और यह भी सोचकर कि सभी व्यक्ति शरीर के भीतर हर समय, और तो और, पूजा के समय भी प्राकृतिक नियम के अधीन कुछ न कुछ विष्ठा लिए रहते हैं जिसका उत्सर्जन आवश्यकता-नुसार करते रहते हैं, मैंने इस शर्त के लिए हामी भर दी ।

'दूसरी शर्त क्या है ?' मैंने आगंतुक से प्रश्न किया ।

आगन्तुक कुछ गंभीर मुद्रा में बोले—"दूसरी शर्त का पालन केवल एक बार मंत्र की दीक्षा लेते समय करना होता है । यह मात्र एक संकल्प है जिसे आपको मेरे सामने धनदा यक्षिणी को संबोधित कर लेना होगा । संकल्प इस प्रकार है—'जैसे तुम इस जीवन में मेरी सेवा कर रही हो उसी प्रकार इस शरीर के छूटने पर मैं तुम्हारी सेवा करूँगा । यह मेरा तुमको सत्य वचन है ।"

इस दूसरी शर्त को सुनकर मेरा सर चकराने लगा । इस जीवन की सीमित अवधि में धनदा यक्षिणी मेरी सेवा करेगी । जब चाहूँगा स्वर्ण पा जाऊँगा । किन्तु शरीर छूटने पर अशरीरी आत्मा को असीमित अवधि तक धनदा यक्षिणी की सेवा करनी पड़ेगी । पिशाचलोक, प्रेतलोक, रौरव नर्क के अनेक चित्र मानस-पटल पर घूम गए जिन्हें बचपन से पढ़ रखा था या सुन रखा था । शरीर छूटने पर धनदा

यक्षिणी की यह सेवा असीमित अवधि के लिए थी । इसका कब अन्त होगा, कुछ पता नहीं ।

दूसरी शर्त मानने से मैंने स्पष्ट इनकार कर दिया ।

'तब फिर मुझे आज्ञा दीजिए, मैं चलता हूँ ।'—आगन्तुक ने कहा और वे उठकर मकान के बाहर चले गये । गोधूलि बेला में उनकी क्रमशः धुँधली होती आकृति अपने निवास से देख रहा था । और फिर वे नजरों से ओझल हो गये ।

*

आखिर कैसे ?

बिहार में एक इस्टेट (पुरानी रियासत) सूरजपुरा है—शायद इसका नाम आपने भी सुना होगा । इसी इस्टेट के राजघराने से सम्बद्ध एक परिवार से मेरे परिवार के सम्बन्ध वर्ष 1969-70 में हुए जब विधि मंत्रालय, दिल्ली की सेवा में मैं प्रतिनियुक्त हुआ । उक्त राजसी परिवार के मुखिया भी राज्य सेवा में थे । दिल्ली में सेवारत अनेक परिवार सुविधा की दृष्टि से गाजियाबाद में रहते थे । हम दोनों के भी आवास गाजियाबाद की कविनगर कॉलोनी में थे । शाम को अक्सर ही साथ होता था । दिल्ली के शोरगुल से दूर हमारी कॉलोनी उस समय अत्यन्त शान्त रहती थी । शाम को जब हम मिलते, अनेक विषयों पर चर्चा होती । कभी-कभी अनसुलझे रहस्यों पर भी चर्चा होती जिसका हम लोगों के पास कोई संतोषजनक उत्तर नहीं था । अनसुलझे रहस्य का ऐसा ही एक प्रसंग कुँवरजी के मुख से एक शाम सुनने को मिला, जिसकी सत्यता मैं असंदिग्ध मानता हूँ । यह दूसरी बात है कि इसका उत्तर न कुँवरजी के पास था और न मेरे पास कि आखिर यह सब कैसे होता है ? कुँवरजी ने जो घटना सुनाई उसी घटना को आपको सुना रहा हूँ । कोशिश यही कर रहा हूँ कि उनकी कहानी ज्यों की त्यों उन्हीं के शब्दों में आपसे कह सकूँ । कुँवरजी की जबानी सुनी घटना इस प्रकार है—

'सूरजपुरा के बाहरी क्षेत्र में एक बाबाजी का आश्रम था । बाबाजी केवल धोती पहनते थे और एक मोटी चादर बराबर शरीर पर लपेटे रहते थे । बाबाजी के पास हम जब-तब जाते और जिद करते 'बाबा अमुक फल मँगा दो—अमुक मिठाई मँगा दो' । बाबा टालमटोल करते पर जब हम ज्यादा जिद करते तो बाबा हम सबसे पिंड छुड़ाने के लिए अपनी चादर के भीतर हाथ डालते और माँगी गयी वस्तु निकाल कर दे देते । फिर डाँटकर कहते—'अब भागो ।' मँगाई वस्तु इतनी पर्याप्त होती कि हम सभी थोड़ा-बहुत उसे खा सकते थे । बाबा के चरण छूकर हम वापस आते और रास्तेभर इस पर जोरदार चर्चा होती कि आज के वैज्ञानिक युग में इस प्रकार वस्तुओं का मँगाना कैसे संभव है ? हमारी फरमाइश अक्सर उन वस्तुओं की होती है जो सामान्यत: बाजार में उस मौसम में उपलब्ध नहीं होती थीं । जैसे जाड़े के मौसम में जामुन या आम की फरमाइश या गर्मी के मौसम में हरे मटर की फरमाइश । कभी-कभी फूल की भी फरमाइश करते थे । गुलाब का फूल या बेले के फूल की फरमाइश । बाबा चादर के अन्दर से उस फूल का महकता हुआ गुच्छा निकाल देते थे । यह हम सब लोगों के लिए अचंभित करने वाले किसी काले जादू से कम नहीं था । किसी सम्मोहन या इन्द्रजाल का सवाल ही नहीं था क्योंकि मँगाई गई वस्तु

को हम घर ले जाकर परिवार के सदस्यों को भी खिलाते थे, दिखलाते थे । बेमौसम के फल-फूल को देखकर वे हर्षित और आश्चर्यचकित होते थे । तब मेरी पढ़ाई पूरी हो चुकी थी । मेरे पास समय ही समय था । नगर में एक 'क्लब' था । सायंकाल हमलोग टेनिस खेलने वहाँ जाते और जिन लोगों को 'ब्रिज' खेलने का शौक था वे 'ब्रिज' खेलते । छोटी जगह होने के कारण अधिकारी सपत्नीक आते थे । इन्हीं आनेवालों में हमारे अंग्रेज कलेक्टर भी थे जो कभी-कभी अपनी मेम साहब के साथ 'क्लब' आते, ब्रिज के एक-दो हाथ खेलते, गपशप करते और चले जाते । देश तब आजादी की दहलीज पर था पर स्वतंत्र नहीं हुआ था ।

एक शाम उन अंग्रेज कलेक्टर ने खुद ही हमलोगों के बीच कहा—'यह बाबाजी के बारे में तरह-तरह की अफवाहें क्यों उड़ती रहती हैं कि वह 'यह मँगा देते हैं, वह मँगा देते हैं ।' यह सब या तो हाथ की सफाई है या हिप्नाटिज़्म । हम लोगों ने तत्काल आदरपूर्वक विरोध किया और उनसे कहा कि आप जब चाहें, खुद देख लें कि न तो यह हाथ की सफाई है न कोई सम्मोहन । कलेक्टर के साथ आई उनकी मेमसाहब ने कहा—'तब बाबाजी को 'क्लब' में बुलाइए ।' हमें जानकारी थी कि बाबाजी अभी कल ही तो नगर में थे इसलिए हमलोगों ने मेमसाहब का अनुरोध चुनौती के रूप में स्वीकार कर लिया ।

अगले रोज सुबह हम थोड़े से लोग बाबाजी के आश्रम पहुँचे । सारी घटना उनसे बतलाई और शाम को 'क्लब' चलने का विनम्र अनुरोध किया । बाबाजी इसके लिए राजी नहीं थे पर जब उनसे हम सबने दाँव पर लगी भारतीय अध्यात्म की प्रतिष्ठा पर बल दिया तो वे शाम को चलने के लिए राजी हो गये । शाम को मोटर से हम सब बाबाजी को लगभग सात बजे अपने 'क्लब ले गये । वहीं से फोन द्वारा कलेक्टर साहब को इत्तिला दे दी गयी कि बाबाजी 'क्लब' में आ गये हैं, आपकी प्रतीक्षा हो रही है । थोड़ी ही देर बाद कलेक्टर साहब अपनी मेमसाहब के साथ 'क्लब' पहुँच गये । औपचारिक अभिवादन के पश्चात् हम लोगों ने कलेक्टर साहब से कहा—'आप कोई भी चीज बाबाजी से मँगाने को कहें ।' कलेक्टर बोले—चीज मँगाने को मैं नहीं कहूँगा, मैडम कहेंगी ।' हम लोगों की उत्सुकता-भरी आँखें कलेक्टर की श्रीमतीजी की ओर उठीं । फिर मेमसाहब ने जो फरमाइश की, उसके पीछे लगता था, दिन भर सोचने-विचारने के पश्चात् ही उन्होंने अपनी पसंदीदा चीज की बाबत यह निर्णय लिया था । चुनौती की बात जो थी ।

मेमसाहब बोलीं—'इसी गर्मी में मैं लंदन गयी थी जहाँ हमारा अपना फ्लैट है । मेरी माँ को तो गुजरे कई वर्ष हो गये । उनका एक छोटा-सा मढ़ा हुआ चित्र मैं हमेशा अपने पास रखती थी और इसे बहुत शुभ मानती थी । लंदन से वापस आने की हड़बड़ी में वह चित्र फ्लैट में ही छूट गया । अब बिना मेरे लंदन वापस गये, बंद फ्लैट खुल नहीं सकता । मैं इसी से परेशान हूँ । अब न जाने कब लंदन जाने

का मौका मिलेगा और मैं माँ का चित्र ला सकूँगी। उनका कोई और चित्र मेरे पास नहीं है। मैं चाहती हूँ कि आप मेरी माँ का चित्र लंदन के मेरे फ्लैट से मँगा दें।

मेमसाहब की अप्रत्याशित फरमाइश सुनकर हम सब सन्न रह गये। लगभग सभी के मन में यह विचार उठा कि हम बाजी हार गये। सात समुन्दर पार लंदन के बंद फ्लैट से चित्र कैसे सूरजपुरा के इस 'क्लब' में आ सकता है ?

इस चुनौतीपूर्ण अनुरोध पर बाबा के चेहरे पर हल्की-सी मुस्कुराहट फैल गयी। फिर बाबा प्रश्न पर प्रश्न पूछते गये और मेमसाहब उत्तर देती गईं। लंदन के रेलवे स्टेशन पहुँचकर आपके फ्लैट तक जाने का क्या आसान रास्ता है ? फ्लैट किस क्षेत्र में स्थित है ? उस क्षेत्र को किस नाम से जाना जाता है ? फ्लैट किस मंजिल पर है और किस रंग में रँगा है ? फ्लैट का नम्बर क्या है ? माँ की फोटो फ्लैट के किस कमरे में रखी हुई है ? खुले टेबिल पर है या बन्द बक्से में ? मेमसाहब ने सभी प्रश्नों का उत्तर दिया और माँ की फोटो के बारे में बतलाया कि उनके फ्लैट के सोनेवाले कमरे में एक शृंगारदान (ड्रेसिंग टेबिल) है। उसी शृंगारदान के दाहिने 'ड्राअर' में माँ की फोटो बन्द है। उस 'ड्राअर' में भी फर्नीचर वाला ताला लगा है, जिसकी ताली इस समय भी मेमसाहब के पास है। लंदन प्रवास के दौरान, हर सुबह मेमसाहब नियम से ड्रेसिंग टेबिल का ड्राअर खोलती थीं, माँ के चित्र को निकाल कर माथे लगाती थीं और फिर उसे 'ड्राअर' में रखकर ताला बंद कर देती थीं। उनकी माँ की फोटो अब भी उसी 'ड्राअर' में बन्द है।

सब सुनकर बाबा ने अपना हाथ चादर के अन्दर डाला, आँखें बंद कीं। बाबा को किंचित् झूमते हुए देखा गया और फिर बाबा ने कुछ ही देर बाद अपने हाथ को चादर से बाहर निकाला। उनके हाथ में एक छोटा-सा मढ़ा हुआ चित्र था। उस चित्र को मेमसाहब को देते हुए कहा—'आपकी माँ की कहीं यही तस्वीर तो नहीं है ?'

तस्वीर मेमसाहब की माँ की थी, जो वह लंदन के अपने फ्लैट में शृंगारदान में बंद कर आई थीं और जिसे भारत वापस आते समय अपने संग लाना भूल गई थीं। हम लोगों ने मेमसाहब के चेहरे पर परम आश्चर्य और परम हर्ष की रेखाओं का एक साथ संगम देखा और फिर मेमसाहब कुर्सी पर ही मूर्च्छित-सी निढाल हो गयीं।

कलेक्टर ने स्तब्ध होकर यह सब कुछ अपनी आँखों से देखा। पहली बार एक अंग्रेज कलेक्टर को बाबा का चरणस्पर्श करते हम सबने देखा। मेमसाहब के सामान्य होने के पहले ही बाबा चादर संभालते हुए आश्रम वापस जाने के लिए उठे। कलेक्टर साहब मोटर तक हमलोगों के साथ बाबा को छोड़ने आए। हम सबके बीच आज तक यह अनसुलझा प्रश्न है—'आखिर कैसे ?'

*

भृगु-संहिता (1)

जब मैं काशी हिंदू विश्वविद्यालय में एम०ए० का छात्र था तभी श्री भीखन लाल आत्रे जिन्हें ज्यादातर उनके अंग्रेजी नाम बी०एल० आत्रे से जाना जाता था, विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के विभागाध्यक्ष थे। हमारी हिंदी कक्षा में 'हिन्दी समिति' नाम की एक साहित्यिक संस्था थी और किसी चुने हुए विषय पर हम किसी विद्वान् का विद्वत्तापूर्ण भाषण सुनते थे। मैं समिति का सचिव था। इस नाते एक बार श्री आत्रे से मैंने पुनर्जन्म पर बोलने का अनुरोध किया। यह उनका प्रिय विषय था। मुझे अच्छी तरह याद है कि सारी एम०ए० की कक्षा उनके भाषण को विस्मय से मंत्र-मुग्ध सुन रही थी। आवश्यक शिष्टाचार के नाते भाषण के समापन पर श्री आत्रे को उनके निवास तक मैं छोड़ने गया और रास्ते में मैंने भृगु-संहिता की चर्चा उठाई।

मेरा सहज प्रश्न था—'अगर व्यक्ति का भूत-वर्तमान और भविष्य पहले ही भृगु-संहिता जैसे ग्रंथ में अभिलिखित है तो फिर पुनर्जन्म भी ग्रन्थ के अभिलेख के अनुसार होगा। पुनर्जन्म पर पश्चिम में और पूर्व में इतना शोध करने की, इतना व्यय करने की क्या प्रासंगिकता है ?'

श्री आत्रे ने मुझे इस संदर्भ में जो कुछ बतलाया उसे मैं यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ। भृगु-संहिता के जिन आचार्य का उन्होंने नाम बतलाया था उनके वंशज अब भी बनारस में हैं। अत: उनका असली नाम न लेकर एक कल्पित नाम 'ईश्वरदास' ले रहा हूँ।

श्री आत्रे की नियुक्ति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में दर्शन-शास्त्र विभाग में वर्ष 1923 में हुई थी। वर्ष 1916 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना हुई थी। श्री आत्रे विश्वविद्यालय के आरम्भिक वर्षों से ही काशी में सेवारत थे। दर्शन शास्त्र के प्रोफेसर होने के नाते उनकी स्वाभाविक रुचि यहाँ की तंत्र विद्या, पहुँचे साधकों, सिद्ध-मंदिरों तथा भृगु-संहिता जैसे ग्रन्थों में थी। इसी सिलसिले में वे ईश्वरदास (कल्पित नाम) के सम्पर्क में आये और फिर यह सम्पर्क मैत्री में बदलता चला गया। श्री आत्रे एक प्रकार से ईश्वरदास के परिवार के सदस्य जैसे हो गये। श्री ईश्वरदास ने श्री आत्रे के भी पृष्ठ का पाठ अपनी भृगु-संहिता से करके उन्हें चमत्कृत कर दिया था। श्री आत्रे ने मुझे बतलाया कि उस जमाने में ईश्वरदास ने अपनी भृगु-संहिता से इतना धन अर्जित किया कि अनेक भवन बनारस में खरीद लिये। सुख-सम्पदा से ईश्वरदास और उनका परिवार लदा रहता था।

श्री आत्रे ने यह देखा कि जब भी भृगु-संहिता का पाठ ईश्वरदास करते, वही मोटी-सी प्राचीन पुस्तक भीतर से निकाल कर ले आते जिसके पन्ने-पन्ने अलग रहते

और जो देखने से ही हस्तलेख में लिखा एक काफी प्राचीन ग्रंथ लगता। जिसकी कुण्डली पढ़ी जाने वाली होती उसकी कुंडली का अवलोकन कर भृगु-संहिता से वह पृष्ठ निकालते जो उस व्यक्ति की जीवनी से संबद्ध था और उसका पाठ करते जो सही होने के कारण व्यक्ति को बहुत प्रभावित करता था। इस प्रकार शनैः-शनैः ईश्वरदास की ख्याति बढ़ती गई, जिनके साथ ही धन का अम्बार भी लगता गया। फिर एक दिन वह भी आया जब ईश्वरदास का शरीर छूट गया। श्री आत्रे शोक-संवेदना प्रकट करने उनके निवास पर गये। ईश्वरदास के सभी बच्चे उनके सामने आये। ढाँढ़स बँधाने के बाद श्री आत्रे ने उनसे कहा—'तुम्हारे पिता ने इतना यश और धन मात्र एक ग्रंथ भृगु-संहिता से अर्जित किया। परिवार के मित्र होने के नाते मेरी सलाह है कि तुममें से कम से कम एक बच्चा अपने पिता की परिपाटी को कायम रखते हुए भृगु-संहिता का पाठ चलाता रहे। इसे कभी मत छोड़ना।'

श्री आत्रे, ईश्वरदास के परिवार के इतने करीब आ चुके थे कि उनके और ईश्वरदास के परिवार के बीच कोई पर्दा नहीं था। एक बालक भीतर गया और वही भृगु-संहिता का ग्रंथ समूचा उठा लाया जिससे श्री ईश्वरदास बराबर भृगु-संहिता का पाठ करते थे। ईश्वरदास के बच्चों ने पूछा—'यही वह ग्रंथ है न जिससे बाबूजी पाठ किया करते थे ?' श्री आत्रे ग्रंथ को बखूबी पहचानते थे। उन्होंने तत्काल हामी भर दी। बच्चों ने तब उनसे कहा—'इसमें से आप कुछ पन्ने कहीं से भी निकाल लीजिए और इसे विश्वविद्यालय में किसी विद्वान् से पढ़वा लीजिये। हम लोग तो इसे न पढ़ पाते हैं न समझ पाते हैं।'

श्री आत्रे ने ग्रंथ के बीच में से लगभग सात-आठ पृष्ठ निकाल लिये। निकाले गये स्थान पर पहिचान के लिए एक पन्ना सादा कागज लगा दिया गया जिससे पन्नों की वापसी उसी स्थान पर हो जाये। अखबार में निकाले गये पन्नों को लपेटकर श्री आत्रे विश्वविद्यालय ले आये। तब तक कॉलेज ऑफ इन्डॉलॉजी भी जोर-शोर से चल रहा था। वहीं एक प्रोफसर मित्र को श्री आत्रे ने यह काम सौंप दिया। लगभग पन्द्रह दिन बाद बहुत माथा-पच्ची करने के पश्चात् उक्त प्रोफेसर ने श्री आत्रे से उन पृष्ठों का खुलासा कर ही दिया। पृष्ठ वापस करते हुए कहा—'ये प्राचीन खरोष्ठी लिपि में लिखे वाल्मीकि रामायण के कुछ पृष्ठ हैं। इनका किसी भृग-संहिता से कुछ भी लेना-देना नहीं है।

श्री आत्रे इन पृष्ठों को पुनः संभालकर ईश्वरदास के परिवार को सौंप आये और इन पृष्ठों की बाबत उक्त बात भी उन्हें बतला दी।

मेरा स्वाभाविक प्रश्न था—'फिर ईश्वरदास उस ग्रंथ से क्या पढ़ते थे ? ऐसा क्या पढ़ते थे जो इतना सही होता था ?'

श्री आत्रे ने जो बतलाया मैं उसी को लिख रहा हूँ। श्री आत्रे का कहना था कि ईश्वरदास के पास कोई तांत्रिक शक्ति थी जिससे वे सामने बैठे व्यक्ति का भूत-वर्तमान और भविष्य बतलाते थे। इस तंत्र-शक्ति को गोपनीय रखने के लिए उन्होंने

भृगु-संहिता जैसे सम्मानित ग्रंथ के नाम का सहारा लिया। यह कोई भी पुस्तक हो सकती थी जो देखने में प्राचीन लगे और जिसकी लिपि का बोध सहज रूप से न हो सके। फिर उसके बारे में भृगु-संहिता शास्त्री यह कहकर कि इस ग्रंथ को उन्होंने नेपाल या बर्मा से प्राप्त किया, उस ग्रंथ पर प्रामाणिकता की मुहर लगा देते थे। किंतु चमत्कृत करने वाला जो पाठ पढ़ा जाता था उसका पुस्तक से दूर-दराज तक भी रिश्ता नहीं होता था। जैसे किसी व्यक्ति के बारे में पाठ चल रहा हो कि आपकी आयु 83 वर्ष की होगी जब आप धन-धान्य से सम्पन्न अपने महल जैसे भवन में शरीर छोड़ेंगे और उक्त ग्रन्थ का जो पृष्ठ सामने खुला हुआ है उसमें हनुमानजी लंका दहन कर रहे हैं।

भृगु-संहिता (2)

वर्ष 1957 में मैं प्रतापगढ़ में मुन्सिफ के रूप में नियुक्त हुआ। वहीं पर मुझे यह जानकारी मिली कि एक अति सिद्ध भृगु-संहिता शास्त्री कभी-कभी कृपा करके भृगु-संहिता का पाठ कर देते हैं। उनके पास अति प्राचीन भृगु-संहिता है जो भोज-पत्र पर लिखी हुई है। स्वाभाविक जिज्ञासा थी कि आखिर मेरे बारे में भृगु-संहिता में क्या लिखा है।

मैंने पण्डितजी को प्रणाम कहलाया और कभी दर्शन देने का अनुरोध किया। उक्त भृगु-संहिता शास्त्री अधिकारी वर्ग का विशेष सम्मान करते थे। मेरे यहाँ उपस्थित हुए। मेरी कुण्डली देखी और कहा कि आपसे सम्बद्ध भृगु-संहिता का पूरा पाठ कॉपी की बाईं ओर लिखकर लाऊँगा और दाहिनी ओर उसका हिन्दी अनुवाद होगा। मूल पाठ कठिन संस्कृत में है। साथ ही भृगु-संहिता शास्त्री ने मेरे बारे में, मेरे परिवार के बारे में, निवास के बारे में व्यक्तिगत प्रश्न भी किये और फिर चले गये।

प्रति मास मैं भृगु-संहिता शास्त्री के यहाँ संदेश भेजता था कि मैं आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। किन्तु वे लगभग पाँच या छः महीने के पश्चात् ही कॉपी के साथ आये। साथ में मूल भोज-पत्र पर लिखे पृष्ठ भी थे। उसमें वर्तमान की जो बात थी वह चमत्कृत करने वाली थी। मेरे ममेरे भाई तक के विषय में लिखा था कि वे हकलाकर बोलते हैं, जो बात सही थी। परिवार के बारे में सही-सही बातें लिखी गई थीं। भविष्य भी उत्साहित करने वाला लिखा गया था जो सामान्यतः न्याय-पालिका के किसी सदस्य का होता है। मैं भृगु-संहिता शास्त्री से अत्यधिक प्रभावित हुआ।

इसके लगभग डेढ़ वर्ष पश्चात् मेरे यहाँ एक प्रतिष्ठित अधिवक्ता किसी रविवार की सुबह प्रणाम करने आये, जैसा उस वक्त सामान्य रिवाज था। वे मेरे छात्रावास-जीवन के भी साथी थे। अतः उनसे मैंने भृगु-संहिता की बात उठाई और उसकी

प्रामाणिक प्रति उक्त भृगु-संहिता शास्त्री के पास होने की बात कही जो उन्हें नेपाल से मिली थी । वे मेरी सादगी पर हँसने लगे और मुझसे जो बात कही वह भृगु-संहिता शास्त्री की शान के विरुद्ध जाती है । इसलिए भृगृ-संहिता शास्त्री के नाम, ग्राम के बारे में मैं कुछ नहीं कहूँगा । यहाँ तक कि उनकी जाति के बारे में भी मैंने गोपनीयता बरती है । उन्हें मात्र 'भृगु-संहिता शास्त्री' कहा है ।

वकील साहब बोले—'यहाँ के एक बड़े रईस की अकेली लड़की के विवाह का प्रसंग मेरे छोटे भाई से चला जिसकी मैंने तत्काल हामी भर दी । अकूत सम्पत्ति इस रिश्ते से घर में आ रही थी । जो कुछ था इसी लड़की का ही था । किन्तु इसी बीच एक अन्य सज्जन को इस लड़की के बारे में पता चला जो मुझसे काफी बड़ी हैसियत के थे और उनका लड़का भी मेरे छोटे भाई से कहीं ऊँचे स्तर का था रूप में, सम्पन्नता में और नौकरी में । अत: मेरे छोटे भाई से रिश्ते की बात हटकर मेरे प्रतिद्वन्द्वी के यहाँ चली गई । वकील साहब कुशाग्र बुद्धि के थे । उन्हें मालूम था कि उक्त भृगु-संहिता शास्त्री के यहाँ लड़की के पिता ने अपनी लड़की की कुण्डली का पाठ और वकील साहब के छोटे भाई की कुण्डली का पाठ करवाया था और संतुष्ट होने पर ही बात आगे बढ़ी थी । अत: यह स्वाभाविक अनुमान था कि वकील साहब के प्रतिद्वन्द्वी के लड़के की कुण्डली का पाठ भी भृगु-संहिता शास्त्री से लड़की के पिता करवाएँगे ।

वकील साहब सीधे भृगु-संहिता शास्त्री के घर पहुँचे । स्पष्ट शब्दों में अपनी समस्या बतलाई और अनुरोध किया कि किसी तरह यह शादी उनके छोटे भाई से ही सम्पन्न हो, उनके प्रतिद्वन्द्वी के लड़के से नहीं । उस जमाने में एक रुपया कुछ माने रखता था । वकील साहब ने चलते समय पाँच सौ एक रुपये भृगु-संहिता शास्त्री के चरणों में रख दिये और मनोरथ पूर्ण होने का उनका आशीर्वाद प्राप्त किया । कुछ महीनों पश्चात् लड़की के पिता ने अपनी पुत्री को वकील साहब के छोटे भाई से ही परिणय-सूत्र के बन्धन में बाँधा । यह कैसे सम्भव हुआ ?

वकील साहब के अनुमान के अनुसार लड़की के पिता वकील साहब के प्रतिद्वन्द्वी के लड़के की कुण्डली लेकर भृगु-संहिता शास्त्री के पास उपस्थित हुए । एक सप्ताह पश्चात् भृगु-संहिता शास्त्री उनके यहाँ इस लड़के की बाबत भोजपत्र के पृष्ठों पर लिखे मूल पाठ लेकर पहुँचे । भृगु-संहिता शास्त्री वकील के प्रतिद्वन्द्वी के परिवार के बारे में बहुत कुछ जानते थे । उसका तो पाठ किया ही जिससे लड़की का पिता प्रभावित हुआ । साथ ही उस प्रतिद्वन्द्वी के लड़के के बारे में अति उज्ज्वल भविष्य की बातें भी बढ़ा-चढ़ाकर बतलाईं जिसको सुनते हुए लड़की के पिता का रोम-रोम हर्षित हो रहा था । तभी अचानक विस्फोट करने वाली पंक्ति आई । 'यह बालक अपने छत्तीसवें वर्ष में सम्पत्ति के विवाद के सन्दर्भ में क्रोध के आवेश में दिन-दहाड़े हत्या का अपराधी होगा । मुकदमा चलेगा और इस बालक हो प्राण-दण्ड मिलेगा और इस प्रकार इसके जीवन का अंत हो जायेगा । यह ध्रुव-सत्य है ।'

लड़की का पिता भारी मन से घर वापस लौटा। घर के लोगों से राय बात की। वकील साहब के घर मिठाई का डिब्बा लेकर पहुँचा। क्षमा माँगी। पण्डित बुलवाकर विवाह का शुभ मुहूर्त निश्चित हो गया। इस प्रकार उनकी सौभाग्यवती कन्या का विवाह वकील साहब के छोटे भाई से सम्पन्न हो गया।

भृगु-संहिता (3)

प्रतापगढ़ में सेवारत रहने के पश्चात् वर्ष 1960 से 1963 तक मैं इलाहाबाद में मुंसिफ के रूप में कार्यरत हुआ। लगभग पचास वर्ष पूर्व आज से कुछ भिन्न माहौल बेंच और बार के रिश्ते का था। न्यायिक कार्य अपनी जगह निर्धारित समय सीमा के भीतर और एक-दूसरे का व्यक्तिगत-सम्मान अपनी जगह। इसी सिलसिले में यदि किसी अधिवक्ता के घर कोई समारोह होता तो उसमें हम सभी न्यायिक अधिकारी जरूर शरीक होते। हम लोगों के किसी समारोह में निमंत्रण पाकर कोई ऐसा अधिवक्ता नहीं होता (कितना ही बड़ा क्यों न हो) जो थोड़ा समय निकालकर शरीक नहीं होता। इसी सिलसिले में मैं माननीय उच्च न्यायालय के एक अति सम्मानित अधिवक्ता के सान्निध्य में आ गया। उनका वास्तविक नाम न लेकर मैं उन्हें केवल श्री 'क' से चिह्नित कर रहा हूँ।

श्री 'क' के विषय में सभी जानते थे कि उन्होंने आर्थिक संकटों से जूझते हुए अपनी पढ़ाई पूरी की थी। फिर उनका प्रेम विवाह हुआ। इसके पश्चात् वे वकालत की बुलंदियों पर जो चढ़ने लगे तो इतनी भी फुर्सत उन्हें नहीं थी कि वे गिन सकें कि आज कितना स्वर्ण उनकी झोली में गिरा। उन्होंने पर्याप्त यश, धन और संपत्ति अर्जित की। देखने में उनका व्यक्तित्व निहायत सुंदर और प्रभावी था।

किसी शाम वे फुर्सत में थे। मौका देखकर मैंने उनसे अनुरोध किया, 'कुछ हमें भी बतलाएँ, आपने कैसे इतनी ऊँचाई हासिल की।'

श्री 'क' मुस्कुराए। खुले दिलवाले आदमी थे। मुझसे बोले, 'मैं दिनभर कोर्ट में अपनी बात कहता रहता हूँ। इस विषय पर तो मैं लगातार बड़ी-बड़ी बातें घंटे भर बोल सकता हूँ। किंतु सही बात यह है कि मैं जैसा हूँ या जिस ऊँचाई तक, जैसा तुम कहते हो, पहुँचा हूँ, वह सब मैं पहले से ही जानता था, यहाँ तक कि मैं अपने होने वाले प्रेम विवाह के भी बारे में जानता था।'

मेरी जिज्ञासा स्वाभाविक थी और बरबस ही मेरे मुँह से निकल गया— 'कैसे ?'

उन्होंने कहा—'इत्तिफ़ाक की बात है कि जिन पंडितजी ने मेरी भृगु-संहिता पढ़ी थी वे अभी भी हैं। तुम भी जाकर उनसे अपनी भृगु-संहिता का पाठ करवा लो।

कुण्डली लेते जाना। उन्होंने मुझे पंडितजी के निवास का पता दिया और मेरे अनुरोध पर पंडितजी को फोन करके मुझे समय देने का अनुरोध भी कर दिया।

उसी रात पंडितजी ने मुझे 9 बजे का समय दिया। इलाहाबाद में गंगा के तट पर पंडितजी का निवास था। किंतु वह समय आज की तरह असुरक्षित नहीं था और किसी न्यायाधीश पर तो किसी प्रकार के खतरे की दूर-दूर से भी कोई आशंका नहीं थी। पंडितजी का नाम, पता आदि मैं इसलिए नहीं दे रहा हूँ क्योंकि मुमकिन है कि उनके वंशज इस बात को पसंद न करें। यह भी मुमकिन है कि कोई वंशज पंडितजी की ही तरह इस वक्त भी भृगु संहिता से जुड़ा हुआ हो।

निर्धारित समय पर मैं रात के सन्नाटे में पंडितजी के निवास पर पहुँच गया। उतनी देर रात भी पण्डितजी को चार-पाँच लोग घेरे हुए थे। वे सब जब चले गये तब मध्य रात्रि के एक बजे मेरा नम्बर आया। मुझे अपनी कुण्डली ले जाने के लिए कहा जा चुका था। उसे देखकर पण्डितजी ने अपने रजिस्टर में संशोधित कुण्डली बनाई और मुझसे कहा, 'अब यह आपकी शुद्ध कुण्डली है।'

उसे लेकर वे निवास के किसी भीतरी कमरे में गये और लगभग बीस-पच्चीस बहुत पुराने पत्रे लेकर आए जिस पर काली स्याही से संस्कृत में पंक्तियाँ लिखीं थीं। लेख के दोनों ओर लाल रंग की दो-दो लाइनें खिची हुई थीं।

पण्डितजी ने कहा, 'आपकी कुण्डली के पृष्ठ मिल गये। किन्तु पूरी भृगु-संहिता की पुस्तक तो लाई नहीं जा सकती जिसे मैं गाड़ी पर लदवाकर नेपाल से लाया था।' फिर पण्डितजी ने मेरी कुण्डली का भृगु-संहिता पाठ आरम्भ किया। चमत्कृत करनेवाला वह पाठ था। मेरा जन्म, मेरा परिवार, मेरी शिक्षा, आरम्भ की वकालत, न्याय सेवा में चयन आदि का इतना सटीक विवरण था कि इसका सवाल ही नहीं उठता था कि पंडितजी को इसकी बाबत पूर्व जानकारी किसी प्रकार से मिल गयी थी। इतने में मध्यरात्रि के तीन बज गये। पण्डितजी ने मुझसे कहा—'हुज़ूर' को 'कोर्ट' भी करना है। अब आप घर जाकर विश्राम कीजिए। रात को फिर ऐसे ही आ जाइए।'

मेरे अधिवक्ता बंधु ने कॉपी-पेंसिल ले जाने के लिए मुझे पहले ही हिदायत दे दी थी। पण्डितजी ने जो कुछ भी मुझसे कहा था वह मैंने जल्दी-जल्दी कॉपी में नोट कर लिया था। फिर रात के तीन बजे के लगभग पण्डितजी का चरण-स्पर्श कर मैं घर की ओर चल पड़ा। इत्तिफाक से एक रिक्शा भी मिल गया जिससे घर पहुँचने की सुविधा हो गयी।

अगले रोज मैं फिर पण्डितजी के यहाँ पहुँचा। मेरा नम्बर कुछ जल्दी ही आ गया। रात के लगभग साढ़े बारह बजे; और फिर पण्डितजी ने रात के ढाई बजे तक भृगु-संहिता का पाठ किया। यह सिलसिला इसी तरह दो-तीन दिन और चला और इस तरह मेरी भृगु-संहिता पढ़ी गयी जिसमें भूत भी था, वर्तमान भी था, और भविष्य

भी वर्णित था। ग्रह-शांति हेतु अपेक्षित पूजा भी निर्दिष्ट थी। सबसे बड़ी बात यह थी कि किसी काल में यदि कोई अस्वस्थता लिखी हुई थी तो यह भी लिखा गया था कि किस जड़ी-बूटी के प्रयोग से यह अस्वस्थता दूर हो जाएगी।

फिर थोड़े-थोड़े अन्तराल पर मैंने पण्डितजी से अपने परिवार के अन्य सदस्यों की कुण्डली भी पढ़वाई और उनके किए गये पाठ को अलग-अलग कॉपी में नोट करता गया।

मैंने यह पाया था कि जो समय बीत चुका था उसके सम्बन्ध में पण्डितजी का पाठ बिल्कुल सही था। वर्तमान के सम्बन्ध में इतना ही कहूँगा कि अधिकांश सही निकला। भविष्य काल के सम्बन्ध में तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता।

एक खास बात कहना चाहता हूँ। अक्सर मैं देखता था कि पाठ करते-करते पण्डितजी चार-पाँच पन्ने उलट गये और मेरा एक पृष्ठ भी पूरा नहीं हुआ और कभी-कभी पण्डितजी के सामने वाला पृष्ठ खुला का खुला रहा और पण्डितजी का पाठ चलता रहा और मेरी कॉपी के जब पाँच-छः पृष्ठ भर गये तब पण्डितजी ने अपने सामने के पृष्ठ को पलटा। मैंने इस बात को माननीय उच्च न्यायालय के एक अति सम्मानित न्यायाधीश के समक्ष रखा। उन्होंने जो बात बतलाई वह चौंकानेवाली थी और इसीलिए मैंने पण्डितजी का नाम पता गोपनीय रखा कि कौन जाने पण्डितजी का कोई वंशज अब भी भृगु-संहिता का पाठ कर रहा हो। उन अति सम्मानित न्यायाधीश ने मुझसे कहा—'मेरा भी पाठ पण्डितजी ने किया था और बातें ज्यादातर सही निकलती जा रही हैं। यह एक सिद्धि है जिसके कारण ही पण्डितजी भूत, वर्तमान और भविष्य का संस्कृत पाठ करते हैं और फिर उसका हिंदी अनुवाद भी लिखवा देते हैं। तुमने यह नहीं ध्यान दिया कि कभी-कभी संस्कृत की दो लाइनों का अनुवाद हिंदी की पच्चीस-तीस पंक्तियों में हुआ और कभी संस्कृत की सात-आठ पंक्तियों का अनुवाद पण्डितजी ने हिन्दी की केवल एक ही पंक्ति में कर दिया। तंत्र शक्ति के वशीभूत हो पाठ करते समय पण्डितजी को इसका होश शायद नहीं रहता है कि कब पृष्ठ उलटना है जिससे बोले जा रहे पाठ का सामने खुले पृष्ठ से कोई तालमेल बैठ सके।'

मुमकिन है कहीं कोई ऐसी भी भृगु संहिता हो जिससें हर व्यक्ति का वह पाठ दिया हो जो भृगु संहिता शास्त्री पढ़ रहा हो। किन्तु इस संभावना को भी निराधार नहीं कहा जा सकता कि कुछ पहुँचे हुए लोग केवल तांत्रिक शक्ति से भृगु-संहिता का ऐसा पाठ कर देते हैं जो जातक को चमत्कार से झकझोर देता है और जिसका पुस्तक से लेना देना नहीं है। एक वर्ग ऐसा भी हो सकता है जो भृगु-संहिता की आड़ में आपके सीधे-सादे मिजाज का फायदा उठा रहा हो।

*

परकाया-प्रवेश-(1)

सेना में वरिष्ठ पद पर कार्यरत मेरे मित्र अधिकारी की बात पर मुझे विश्वास न करने का कोई आधार नहीं है । वे संत प्रकृति के हैं और सत्यनिष्ठ हैं । किन्तु सेना में चयनित होने के पूर्व वे विश्वविद्यालय जीवन में बड़े ज़िन्दादिल इंसान थे । सेना में जाकर यह ज़िन्दादिली कुछ और सजीव हो उठी । फिर अपनी सेवा के कुछ वर्षों बाद जब वे बरेली में कार्यरत थे, मेरी भी पोस्टिंग बरेली में सिविल जज के पद पर हुई । मुझे अपने मित्र के बरेली में कार्यरत होने की जानकारी थी । एक शाम अपने मित्र से मिलने मैं उनके घर पहुँचा । मैं स्तब्ध रह गया अपने मित्र में एकदम बदलाव देखकर । रहन-सहन, खानपान, वस्त्र आदि में वही सादगी और धवलता झलकती थी जो किसी साधु की कुटिया में झलकती है ।

आखिर जीवन में इतना बड़ा बदलाव कैसे आया ? जीवन के मोड़ का वह कौन-सा क्षण था जिसने मेरे मित्र को सेना में वरिष्ठ पद पर होते हुए भी जनक-सा विदेह बना दिया ? मेरी जिज्ञासा स्वाभाविक थी । अध्यात्म के प्रति मेरी रुचि के बारे में मित्र को पता था और फिर वो मेरे मित्र भी तो थे । उन्होंने जो दास्तान सुनाई उसी को मैं लिपिबद्ध कर रहा हूँ । यह मेरे मित्र की कहानी है जिस पर मुझे अविश्वास करने का कोई औचित्य नहीं है । जो कहानी मेरे मित्र ने सुनाई थी वह उन्हीं की जुबानी नीचे दे रहा हूँ । कोशिश कर रहा हूँ कि जिस तरह उन्होंने मुझे अपनी कहानी सुनाई थी उसी तरह से मैं प्रस्तुत कर सकूँ । कहानी इस प्रकार है—

"तुम्हें याद होगा सेना में मेरी पहली पोस्टिंग गौहाटी में हुई थी । मैं स्वभाव से ही नास्तिक था और इसी में विश्वास करता था—जब तक जीवन है, खुशी से रह लो । मृत्यु की दशा में जीवन की किताब हमेशा के लिए बन्द हो जायेगी । और फिर चिता की राख को भी हवा का तेज झोंका उड़ाकर कहाँ ले जायेगा, कुछ पता नहीं । जो वर्तमान है वही जीवन है वही सत्य है ।

गौहाटी में रहते हुए ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे-किनारे चलना मुझे बड़ा अच्छा लगता था । अवकाश के दिनों में मैं नदी के किनारे-किनारे दूर तक चलता था । थक जाने पर किसी झाड़ी की ओट में बैठकर ब्रह्मपुत्र का निरन्तर बहता हुआ प्रवाह देखता था । नितांत एकान्त के सन्नाटे में यह सब कुछ मुझे बहुत अच्छा लगता था ।

फिर एक दिन जब मैं झाड़ी की ओट में बैठा ब्रह्मपुत्र की लहरों को देख रहा था, एक साधु को मैंने नदी के जल में उतरते देखा । उस साधु को मेरी उपस्थिति का कोई एहसास नहीं था । नदी का जल साधु की कमर तक था । वहीं खड़े होकर

साधु जैसे प्रतीक्षारत था। बजाय स्नान करने के, हाथ जोड़कर कोई प्रार्थना करते वह मौन खड़ा था और अपनी दाहिनी ओर से बाई ओर प्रवाहित हो रही नदी की धारा को व्यग्रता से देख रहा था। मैं कुछ फासले पर साधु की बायीं ओर झाड़ियों की ओट में बैठा था। साधु मुझे नहीं देख पाया था। किन्तु मैं उन्हें देख रहा था। उन्हें इस प्रकार से खड़ा देख मेरी कौतूहलता जागी। मैं उनकी तरफ नजरें गड़ाये बैठा रहा। साधु देखने से काफी वृद्ध हो चुके थे जिनकी उम्र लगभग 80 वर्ष प्रतीत होती थी। नदी की धारा साधु की ओर से मेरी ओर बह रही थी। कुछ ही देर बाद मैंने देखा किसी युवा का शव तट के किनारे-किनारे बहता हुआ उस साधु के निकट आ रहा था। शव जैसे ही साधु के निकट पहुँचा, साधु ने बाँह पकड़कर शव को खींच लिया। फिर बाँह पकड़े ही पकड़े साधु नदी के तट पर चढ़ा जहाँ से उसने शव को नदी से बाहर खींचकर तट की जमीन पर लिटा दिया। तब मैंने जाना वृद्ध होने के बावजूद उस साधु में इतना बल था कि वह युवक के शव को नदी से जमीन पर खींच लाये।

फिर मैंने देखा उस युवक के शव के बगल में साधु भी लेट गया। युवक के शव को देखने से लगता था कि वह किसी 22-23 वर्ष के युवक का शव है। साधु ने लेटे ही लेटे अपने शरीर को बिल्कुल निढाल कर दिया और फिर मुख से न जाने कौन से मंत्र पढ़ता रहा जिनकी कुछ अस्फुट ध्वनि उसके हिलते अधरों से मुझ तक भी पहुँच रही थी। धीरे-धीरे साधु की वाणी कमजोर पड़ने लगी और मंत्र के समापन तक बिल्कुल ही बन्द हो गई। साधु का शरीर मृत हो चुका था। तभी मैंने देखा कि युवक के शव में स्पन्दन हो रहा है। वह उठकर बैठा और एक नजर साधु के मृत शरीर पर डालकर नगर की ओर तेज कदमों से चलने लगा। उसके चेहरे पर कोई आश्चर्य का भाव नहीं था कि वह जीवित कैसे हुआ। जाहिर बात थी कि युवक के मृत शरीर में साधु ने अपने वृद्ध शरीर को मृत छोड़कर प्रवेश किया और फिर इस परकाया-प्रवेश की प्रक्रिया से पुनः युवा शरीर प्राप्त कर लिया। युवक का शरीर पाकर वह साधु गौहाटी की सड़कों की ओर तेज कदमों से चलने लगा।

मैं तेजी से चल रहे उस युवक की ओर खुद भी बढ़ा। पर उस युवक में न जाने कैसा बल था कि मैं तेज चलकर भी उसका पीछा न कर पाया। आश्चर्य से भरे हुए मन को लेकर मैं आवास लौट आया। किन्तु इस घटना ने मेरी सारी मानसिकता ही बदल दी। मैंने प्रत्यक्ष देखा था कि साधु का वृद्ध शरीर तो मात्र वस्त्र था जिसके जर्जर होने पर आत्मा ने उसे छोड़कर दूसरा बढ़िया वस्त्र धारण कर लिया था। तब से मेरा जीवन ही बदल गया। मेरी कोशिश रहती है कि पवित्र से पवित्र ढंग से रह सकूँ जिससे जब कभी यह शरीर छूटे तो आत्मा के आवास के लिए कोई कायदे का घर मिल सके।

मेरे मित्र की परकाया-प्रवेश की बात ने मुझे किस कदर स्तब्ध किया, किस कदर अभिभूत किया इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है और जब अपने मित्र से विदा लेकर घर लौट रहा था, गीता का यह श्लोक बार-बार मानस में घुमड़ रहा था—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ।

मनुष्य जैसे पुराने कपड़ों को छोड़कर नये कपड़े धारण कर लेता है, ऐसे ही देही पुराने शरीर को छोड़कर नये शरीर में चला जाता है (श्रीमद्भगवद्गीता 2/22)।

परकाया-प्रवेश-(2)

परकाया-प्रवेश की एक कथा नन्द वंश के सम्राट् महानन्द को लेकर है । इसी महानन्द के दो मंत्री थे, शकटार और राक्षस । इनमें से शकटार शूद्र था और राक्षस ब्राह्मण था । नन्दवंश शुद्ध क्षत्रियों का वंश नहीं था, वरन् सम्मिलित क्षत्रियों का वंश था । महानन्द वही सम्राट् था जिसके लिए प्रसिद्ध है कि उसे तथा विवाहिता पत्नी से जन्में उसके आठ पुत्रों को चाणक्य ने हलाहल विष मिले पकवान विचक्षणा नाम की एक दासी की दुरभिसन्धि से खिलवा दिया और वे सब के सब मर गये । ये आठों पुत्र महानन्द की विवाहिता रानी से हुए थे और नवाँ पुत्र महानन्द को मुरा नाम की नाइन से हुआ था जो चन्द्रगुप्त मौर्य के नाम से सम्राट् बना । चन्द्रगुप्त को चाणक्य का आशीर्वाद प्राप्त था ।

बात परकाया-प्रवेश की चल रही थी । परकाया प्रवेश की यह कथा समर्थ गुरु से सीखी गई तंत्र विद्या के रूप में इसे स्थापित करती है । कथा इस प्रकार है— वररुचि, व्याड़ि और इन्द्रदत्त नाम के तीन ब्राह्मणों ने अपने समर्थ गुरु से सभी विद्याएँ सीखीं जिनमें परकाया-प्रवेश की भी विद्या थी । इसके पश्चात् गुरु-दक्षिणा रूप में इन लोगों को एक करोड़ रुपये की आवश्यकता हुई जिसे वे अपने गुरु के चरणों में अर्पित करना चाहते थे । तब यह प्रश्न उठा कि आखिर यह पैसे कहाँ से आयें ? फिर इन लोगों ने तय किया कि पाटलिपुत्र के सम्राट् महानन्द से स्वर्ण का दान माँगा जाये । पर्याप्त सोना दान में देने के लिए महानन्द प्रेरित हों, इसके लिए उनके समक्ष अतीन्द्रिय लोक से जुड़ी कुछ विद्याओं का चमत्कार भी दिखलाया जाये ।

यह संकल्प कर, ये तीनों ब्राह्मण पाटलिपुत्र पहुँचे । वहाँ पता चला कि महानन्द अयोध्या में डेरा डाले हुए हैं । फिर ये तीनों अयोध्या पहुँचे । संयोग की

बात है कि अयोध्या पहुँचने पर पता चला कि महानन्द अभी-अभी मर गये हैं। इन तीनों ब्राह्मणों ने आपस में सलाह की और इन्द्रदत्त ने योगबल से अपने शरीर को छोड़कर सम्राट् महानन्द के शरीर में परकाया विद्या के सहारे प्रवेश किया। इन्द्रदत्त का मृत शरीर उस भवन के एक कमरे में सुरक्षित रखा गया जिससे ये तीनों ब्राह्मण अयोध्या में रुके हुए थे। योजना यह बनी थी कि इन्द्रदत्त जब सम्राट् महानन्द के रूप में जीवित होकर राजकाज सम्भालेगा तो वररुचि को एक करोड़ रुपये के दान का आदेश देगा। रुपये पाकर जब वररुचि अपने साथी व्याड़ि के साथ चला जायेगा तो इन्द्रदत्त पुन: महानन्द का शरीर छोड़कर अपने मृत शरीर में वापस चला जायेगा जिससे महानन्द पुन: मृत हो जायेगा। तब इन्द्रदत्त अपने छोड़े हुए शरीर में प्रवेश कर पुन: अपने साथियों के साथ वापस अपने गुरु के पास चला जायेगा। फिर तीनों मिलकर एक करोड़ रुपये अपने गुरु के चरणों में गुरुदक्षिणा के रूप में अर्पित करेंगे।

योजना सीमित रूप से कारगर हुई। इन्द्रदत्त का मृत शरीर उसके विश्राम कक्ष में मृत पड़ा था। इन्द्रदत्त ने परकाया-प्रवेश के द्वारा महानन्द के शरीर में प्रवेश किया। महानन्द जी उठा। लोग इतने चमत्कृत हुए कि तब से महानन्द को एक और मिला योगानन्द। वररुचि को एक करोड़ रुपये दिए जाने की आज्ञा हुई। महानन्द के जो दो मंत्री शकटार और राक्षस थे, उनमें शकटार बड़ा बुद्धिमान था। उसको संदेह हुआ कि कहीं ऐसा तो नहीं कि परकाया-प्रवेश की विद्या से कोई सम्राट के शव में प्रवेश कर गया है और एक अपरिचित वररुचि को एकबारगी एक करोड़ रुपये देने का आदेश दे बैठा है। शकटार को यह भी डर हुआ कि रुपये दिलवाकर वह व्यक्ति जो परकाया विद्या से महानन्द के शरीर में प्रवेश कर गया है, पुन: अपने छोड़े हुए शरीर में चला जायेगा। तब महानन्द राज्य करने को नहीं रहेंगे और एक करोड़ रुपये जो जायेंगे वह अलग जायेंगे।

पुनर्जीवित हो उठे महानन्द के आदेश के अनुपालन में (जो वास्तव में महानन्द के शरीर में प्रविष्ट इन्द्रदत्त था) एक करोड़ रुपये वररुचि को दिये जा चुके थे। जो भी व्यक्ति महानन्द के शरीर में प्रविष्ट है वह अपने छोड़े हुए शरीर में वापस न जा सके इसके लिए मंत्री शकटार ने आदेश दिया कि राज्य भर में जितने भी मुर्दे हों उनको तत्काल जलवा दिया जाये। इस प्रकार इन्द्रदत्त द्वारा छोड़ा गया शरीर भी राज्यकर्मियों ने जला दिया और इन्द्रदत्त सम्राट् महानन्द के शरीर में रहने के लिए बाध्य हो गया। महानन्द के शरीर में प्रविष्ट इन्द्रदत्त अपने छोड़े हुए शरीर के नष्ट किए जाने पर शकटार से अत्यन्त क्रुद्ध हुआ।

सम्राट् महानन्द का कृपापात्र मंत्री शकटार महानन्द की काया में प्रविष्ट इन्द्रदत्त के आदेश से बंदीखाने में सपरिवार कैद कर लिया गया। पूरे परिवार को नित्य के खाने में केवल दो सेर सत्तू दिया जाता था। कहा जाता है शकटार नित्य ही सत्तू

का बर्तन हाथ में लेकर अपने परिवार से कहता था—'जो भी नन्दवंश को जड़ से नाश करने में समर्थ हो वह सत्तू खाये ।' किसी ने सत्तू नहीं खाया और एक-एक कर शकटार के परिवार के सभी बन्दी सदस्य मर गये ।

किसी तरह से शकटार बंदीखाने के घोर अंधकार को तोड़कर बाहर निकला (जिसका विस्तृत चित्रण जयशंकर प्रसाद के नाटक 'चन्द्रगुप्त' में देखने को मिल सकता है) । बाहर आकर उसने चाणक्य से मित्रता की । दासी विचक्षणा शकटार द्वारा उपकृत दासी थी । वह सम्राट् महानन्द की विश्वस्त सेविका थी । एक दुरभिसन्धि के अधीन चाणक्य द्वारा तैयार किये गये पकवान (जो विषयुक्त थे किन्तु परीक्षण से विष का पता नहीं चल सकता था) महानन्द और उसके आठ पुत्रों को विचक्षणा द्वारा परोसे गये, जिसे खाकर वे सभी मर गये और केवल नवाँ पुत्र चन्द्रगुप्त ही बचा जिसने मुरा नाइन के गर्भ से जन्म लिया था ।

इस प्रकार महानन्द का अन्त हुआ अथवा यों कहें महानन्द के शरीर में परकाया विद्या द्वारा प्रविष्ट इन्द्रदत्त का अंत हुआ ।

आज भी यह नहीं कहा जा सकता कि परकाया-प्रवेश की विद्या सर्वथा लुप्त हो गई है । शंकराचार्य ने किन परिस्थितियों में वाराणसी के मण्डन मिश्र की पत्नी को शास्त्रार्थ में पराजित करने के लिए कुछ समय तक एक राजा के मृत शरीर में प्रवेश किया, उसकी चर्चा जरूरी नहीं है—लगभग हम सभी जानते हैं । वृद्ध साधु द्वारा नवयुवक की मृत काया में प्रवेश करने की बात पूर्व लेख में विस्तार से लिख चुका हूँ । मुझे तो ऐसा लगता है कि यदि हम अपनी विद्या की धरोहर को इसी तरह भूलते रहे और अंधविश्वास कहकर उसका तिरस्कार करते रहे तो यह नुकसान और किसी का नहीं होगा—अपनी ही अपूरणीय क्षति होगी ।

*

ईश्वरीय-दंडविधान

सन् 65 से 67 तक मैं बरेली में सिविल जज के पद पर कार्यरत था । इसी दौरान एक गुरु पूर्णिमा के दिन न्यायालय में एक सिविल वाद दायर हुआ जिसके साथ अन्तरिम निषेधाज्ञा का प्रार्थनापत्र भी था । अन्तरिम निषेधाज्ञा के प्रार्थनापत्र में कहा गया था कि विवादित सम्पत्ति पर वादी का कब्जा दखल है और वाद के निर्णय तक प्रतिवादीगण को अन्तरिम निषेधाज्ञा के आदेश द्वारा निषिद्ध किया जाए कि वे वादी के कब्जा दखल में हस्तक्षेप न करें ।

इस प्रकार के प्रार्थनापत्र जो वादपत्र के साथ दाखिल होते हैं उन पर न्यायालय प्रतिवादीगण को कारण बताओ नोटिस जारी करता है । वे कारण बताएँ कि वादी का अन्तरिम प्रार्थनापत्र क्यों न स्वीकार कर लिया जाए । इसके लिए एक तिथि निश्चित की जाती है जब दोनों पक्षों को सुनकर न्यायालय यह मत प्रकट करता है कि निर्णय तक प्रतिवादीगण को वादी के कब्जा दखल में हस्तक्षेप करने के निषिद्ध किया जाय अन्यथा नहीं । कभी-कभी कारण बताओ नोटिस के साथ ही अन्तरिम रूप से यह आदेश भी पारित कर दिया जाता है कि जब तक प्रार्थनापत्र पर सुनवाई नहीं होती, दोनों पक्षकार मौके पर यथास्थिति बनाए रखें । यह भी सम्भव है कि यदि वादी का प्रथम दृष्टया बहुत मजबूत मामला दिखलाई पड़ता है तो कारण बताओ नोटिस के साथ ही यह आदेश भी दिया जाता है कि अन्तरिम निषेधाज्ञा के प्रार्थनापत्र पर सुनवाई होने तक प्रतिवादी वादी के कब्जा दखल में हस्तक्षेप न करे । सामान्यत: दोनों पक्षों को सुने बिना और दोनों पक्षों के अभिलेख का अवलोकन किए बिना तस्वीर बहुत साफ नहीं रहती । इसलिए न्यायालय अधिकतर या तो अंतरिम आदेश नोटिस जारी करते समय पारित नहीं करता या यह अन्तरिम आदेश पारित करता है कि प्रार्थनापत्र की सुनवाई तक दोनों ही पक्षकार मौके पर यथास्थिति को बनाए रखें । न्यायालय के लिए इस प्रकार का आदेश करना अधिक सुविधाजनक है क्योंकि ऐसे आदेश से किसी भी पक्ष के हित में न्यायालय कब्जा दखल की बात नहीं कहता है । ऐसे आदेश से यही ध्वनित होता है कि जिस पक्षकार का जैसा कब्जा है, प्रार्थनापत्र की सुनवाई तक वह उसी प्रकार का कब्जा बनाए रखे ।

इस मामले में कारण बताओ नोटिस जारी करते हुए मैंने भी पक्षकारों को आदिष्ट किया कि प्रार्थना-पत्र की सुनवाई तक दोनों ही पक्षकार मौके पर यथास्थिति बनाए रखें । विवादित सम्पत्ति बरेली जनपद की बहुत मूल्यवान सम्पत्ति थी जिसके दोनों ही पक्षकार दावेदार थे ।

जैसा विवादित मूल्यवान संपत्तियों के सन्दर्भ में होता है, विपक्षी भी वादी की गतिविधियों पर नज़र रखता है । औपचारिक रूप से सामने नहीं आता क्योंकि अभी सम्मन की तामीली नहीं हुई है । प्रतिवादी को अधिकार है कि वह बिना सम्मन की तामीली की प्रतीक्षा के अदालत के समक्ष हाजिर हो जाए और अपनी बात कहे । पर व्यवहार में देखा जाता है कि प्रतिवादी बहुत कम मामलों में अपने से उपस्थित होता है । वह सम्मन की तामीली होने की राह देखता है ।

बात आयी और गयी । गुरु पूर्णिमा होने के कारण सपरिवार कैंची जाने का कार्यक्रम बना । स्टेशन छोड़ने की औपचारिक आज्ञा प्राप्त कर लगभग साढ़े चार बजे अपराह्न में टैक्सी से कैंची के लिए प्रस्थान किया जहाँ नीम करौली बाबा उन दिनों विश्राम कर रहे थे । बरेली से नैनीताल जाने के लिए लगभग तीन घण्टे की यात्रा के बाद सड़क की बाईं तरफ नैनीताल की चढ़ाई वाली सड़क पड़ती है जिससे नैनीताल पहुँचा जाता है । इस बाईं ओर की चढ़ाई वाली सड़क को छोड़ दिया जाए और सड़क पर आगे बढ़ा जाए तो रानीखेत की ओर यह सड़क चली जाती है और इसी सड़क पर लगभग घंटे-डेढ़ घंटे की यात्रा के बाद भुवाली सेनीटोरियम से चार किलोमीटर आगे कैंचीं पड़ता है जहाँ नीम करौली बाबा का आश्रम है । हम जिस टैक्सी से यात्रा कर रहे थे वह सफेद रंग की एम्बेसडर गाड़ी थी । जब हमारी गाड़ी सड़क के उस स्थल तक पहुँची जहाँ से बाईं ओर नैनीताल की चढ़ाई वाली सड़क जाती है तभी हम लोगों जैसी ही एक सफेद एम्बेसडर कार हमारी टैक्सी से आगे निकलकर बाईं ओर नैनीताल जानेवाली सड़क पर बढ़ गयी; तभी हम लोगों ने देखा कि उसी स्थल पर पहले से खड़ी एक फिएट कार भी जल्दी से उस सफेद एम्बेसडर कार के पीछे नैनीताल जानेवाली सड़क पर चल पड़ी । यह सब हम लोगों ने अपनी टैक्सी से देखा, जिसके ड्राइवर को सख्त हिदायत थी कि गाड़ी तेजी से नहीं चलायेगा, साथ में परिवार जो चल रहा था । हम लोगों ने यहीं समझा कि कोई वी०आई०पी० सफेद एम्बेसडर कार में नैनीताल जा रहा है; उसको पाइलट करनेवाली फिएट गाड़ी आगे निकल आयी थी और सड़क के इस जंक्शन पर वी०आई०पी० गाड़ी का इंतजार कर रही थी । और जब वी०आई०पी० गाड़ी नैनीताल को चली तो यह पाइलट करने वाली फिएट गाड़ी भी उसी के पीछे नैनीताल वाली सड़क पर भागी ।

हम लोग आगे रानीखेत वाली सड़क पर बढ़ गए जो सड़क हमें गंतव्य स्थान कैंची ले जाती । इसी में रात के साढ़े सात बज गए । रानीखेत जानेवाली सड़क पर अभी कैंची तक का आधा रास्ता ही तयकर पाए थे कि मार्ग अवरुद्ध था । एक विशाल पेड़ सड़क के बीचोबीच गिरा पड़ा था । हमारे और ड्राइवर के बस की यह बात नहीं थी कि पेड़ को टस से मस कर सकें । पहाड़ी सड़क पर रात में यों ही

सन्नाटा छाया रहता है । अब कैंची पहुँचा ही नहीं जा सकता था । यही तय क़रने जा रहे थे कि बाबा को इसी स्थल से प्रणाम कर बरेली वापस चला जाए । तभी हम लोगों की ओर विपरीत दिशा से एक बस आती हुई दिखलाई पड़ी । मन में आशा का संचार हुआ ।

यह बस गिरे हुए पेड़ के निकट रुक गयी । स्थिति देखकर सभी यात्री बस से उतरे । सबके श्रमदान से पेड़ को घसीटकर सड़क के एक किनारे लगा दिया गया। गाड़ी के निकलने भर का रास्ता बन गया । बस बरेली के लिए बढ़ गयी । हमारी कार कैंची के लिए चल पड़ी । रात के लगभग नौ बजे हम कैंची पहुँचे । बाबा के दर्शन से सारी थकान दूर हो गयी । प्रसाद ग्रहण कर रात्रि विश्राम कैंची में ही हुआ ।

भोर में बाबा के श्री चरणों में नमन कर हम बरेली के लिए चल पड़े । सुबह के लगभग दस बजे बरेली पहुँच गए । समय से मैं न्यायालय पहुँच गया ।

मैं कह चुका हूँ, बड़े मुकदमों में अनौपचारिक रूप से विपक्षी का पैरोकार मुकदमें से सम्बद्ध जानकारी विपक्षी को देता रहता है जो अभी सम्मन की तामीली की प्रतीक्षा में है । अपनी कारगुजारी से प्रतिवादी को प्रभावित करने के लिए कभी-कभी पैरोकार किसी तथ्य को तोड़-मरोड़कर इस प्रकार से प्रतिवादी के समक्ष रखता है जिससे प्रतिवादी को लगे कि पैरोकार ने अहम् भूमिका निभाई है ।

लगता है जब बरेली से कैंची चलने के लिए टैक्सी अपराह्न में लगभग चार बजे बँगले के बाहर लगी, प्रतिवादी का पैरोकार हरकत में आ गया और चन्द पैसों के पुरस्कार के लिए प्रतिवादी से कोई मनगढ़ंत कहानी गढ़ डाली । लगता है कि पैरोकार की कहानी सुनकर कान के कच्चे प्रतिवादी ने तत्काल किसी फोटोग्राफर को अपनी फिएट कार से नैनीताल के लिए रवाना किया । लगता है उससे कहा गया था कि वह सड़क के उस तिराहे पर सफेद एम्बेसडर गाड़ी की प्रतीक्षा करे जिससे हम यात्रा कर रहे थे और जब हमारी गाड़ी नैनीताल के लिए मुड़े, वह भी पीछे-पीछे लग जाए और हमारी गतिविधियों का गुप्त रूप से फोटोग्राफ लेता रहे जिसके आधार पर वाद के स्थानान्तरण का प्रार्थनापत्र लगाया जा सके । प्रतिवादी सोच भी नहीं सका कि गुरुपूर्णिमा के सन्दर्भ में इतनी लम्बी यात्रा कर कोई गुरु-दर्शन को जा रहा है ।

लगता है जब दूसरी एम्बेसडर कार का पीछा करते फोटोग्राफर और उसके साथी नैनीताल पहुँचे तब उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ । प्रतिवादीगण (जो जनपद के धनाढ्य सेठ थे) के क्रोध से बचने के लिए किसी होटल के लान पर बैठे कुछ लोगों के फोटोग्राफ लिए गये जो चाय पी रहे थे । प्रतिवादीगण को पैरोकार ने सूचित कर दिया कि धुँधलके के कारण साफ फोटो नहीं आई; पर इनमें एक कुर्सी पर जज साहब बैठे हैं ।

फिर क्या था, इन्हीं फोटोग्राफ को संलग्नक बना, वाद के स्थानान्तरण का प्रार्थनापत्र मय शपथपत्र के जनपद न्यायाधीश के समक्ष प्रतिवादीगण ने प्रस्तुत किया। जनपद न्यायाधीश व्यक्तिगत रूप से जानते थे कि न्यायपालिका की गरिमा के प्रतिकूल मैं कोई भी आचरण नहीं करूँगा। उन्होंने मुझे अपने चैम्बर में बुलाया। उनसे मैंने सभी बातें सिलसिलेवार बतला दीं। टैक्सी की रसीद भी दिखला दी और कैंची में बाबा के आश्रम में रात गुजारने की बात बतला दी। नैनीताल की ओर जानेवाली सड़क पर तो हमारी टैक्सी मुड़ी तक नहीं।

जनपद न्यायाधीश ने प्रतिवादीगण के अधिवक्ता को बुलवाया। उन्हें तथ्यों से अवगत कराया और उन्हें यह विकल्प दिया कि वे स्वय कैंची जाकर इसका सत्यापन कर लें कि गुरुपूर्णिमा की रात मैं सपरिवार कैंची में बाबा के आश्रम में रुका था या नहीं। अधिवक्ता भी मेरा सम्मान करते थे और उन्होंने मौखिक रूप से क्षमा माँगते हुए स्थानान्तरण प्रार्थनापत्र को वापस ले लिया। इसके बावजूद इतने गैर जिम्मेदाराना प्रार्थनापत्र से जनपद न्यायाधीश और स्वयं मैं मर्माहत तो हुए ही थे। अभी दो सप्ताह भी नहीं बीते थे, दो युवा प्रतिवादीगण जो अपनी गाड़ी से लखनऊ से बरेली वापस आ रहे थे—कार दुर्घटना में लखनऊ की एक व्यस्त सड़क पर मारे गये। नगर शोक के आलम में डूब गया। प्रतिवादीगण का पैरोकार बरेली से ही फरार हो गया।

भारतीय दण्ड संहिता (इण्डियन पेनल कोड) में ५११ धाराएं हैं। भिन्न अपराधों के लिए भिन्न-भिन्न व्यवस्था दण्ड के संदर्भ में है। पर उसके न्यायालय में केवल दो ही तीन दण्ड हैं। जहाँ तक हो सके हर प्रकार के अपराध से बचना चाहिए क्योंकि उसने स्वयं अपने लिए दो ही तीन दण्ड के विकल्प बना रखे हैं। अपराध छोटा हो या बड़ा, यदि दण्डनीय है, तो इन्हीं दो-तीन विकल्पों से ही ईश्वरीय दंड का चयन होगा। एक बात और, इस दंड की कोई अपील नहीं।

*

जमीन से ऊपर हवा में (1)

वर्ष 1973-74 में जब मैं लखनऊ में सचिव, विधान-परिषद् के रूप में कार्यरत था, प्रशासनिक सेवा की एक वरिष्ठ महिला अधिकारी ने मुझे एक अविश्वसनीय घटना बतलाई जिसकी वे प्रत्यक्षदर्शी गवाह थीं। 'अविश्वसनीय' इसलिये कह रहा हूँ क्योंकि समस्त भौतिकशास्त्र के नियमों को ताख पर रखकर जमीन से ऊपर उठ जाना ही नहीं बल्कि एक स्थान से दूसरे स्थान तक हवा में किरणों की गति सरीखे पहुँच जाना, हमारे योगी, ऋषि-मुनियों के लिए तो सहज बात है किंतु किसी सरकारी अधिकारी या कर्मचारी की बाबत अगर जमीन से हवा में उठने की बात कही जाये तो कोई सहज विश्वास नहीं करेगा।

किन्तु महिला अधिकारी ने जिस घटना का मुझसे जिक्र किया, जिसकी वे प्रत्यक्षदर्शी गवाह थीं, उसकी पुष्टि मेरे एक अन्य मित्र ने भी की जो प्रशासनिक सेवा में उन दिनों वरिष्ठ पद पर लखनऊ में कार्यरत थे। जो सरकारी अधिकारी इस कहानी के नायक हैं, वे घटना के समय एक जनपद में कोषाधिकारी के रूप में सेवारत थे। महिला अधिकारी और दूसरे वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी—दोनों ही उस समय उसी जनपद में कार्यरत थे जहाँ की यह घटना है।

कोषाधिकारी महोदय पूजा-पाठ नियम से करते थे और धर्म-परायण व्यक्ति के रूप में वे जाने जाते थे। अधिकारियों के निवास हेतु बनाई गई कॉलोनी में उन्हें भी एक आवास आवंटित था। महिला अधिकारी भी उसी कॉलोनी में कुछ घरों के बाद निवास करती थीं। दोनों घरों में पारिवारिक सम्बन्ध था।

महिला अधिकारी के अनुसार एक सुबह जब वे कार्यालय जाने के लिए तैयार हो रही थीं तभी कोषाधिकारी का एक लड़का बदहवास-सा उनके घर पहुँचा। हाँफते हुए उसने बताया—'पापा पूजा करते-करते उसी अवस्था में ऊपर उठ गये हैं और कमरे में टँगे पंखे से उसी ध्यानस्थ अवस्था में लगे हुए हैं। हम लोगों ने उन्हें कई आवाजें दीं किन्तु जैसे, उन्हें सुनाई नहीं पड़ा। नीचे से तौलिये को गेंदनुमा बनाकर ऊपर उछाला गया। तौलिये का गेंद उन्हें लगा भी, किन्तु वे टस से मस नहीं हुए और अब भी ऊपर हवा में पूजा की अवस्था में बैठे हुए, पंखे से लगे हुए हैं। अब अगर उनकी समाधि टूटेगी तो कहीं ऐसा न हो कि पापा जोर से नीचे गिरें और उनके हाथ-पैर टूट जायें।''

बात ही कुछ इतनी हैरतअंगेज थी कि महिला अधिकारी तैयार होना छोड़कर, भागी-भागी कोषाधिकारी के निवास पर पहुँचीं। वहाँ उन्होंने स्वयं देखा कि

कोषाधिकारी महोदय पूजा की अवस्था में जैसे ध्यानस्थ होकर बैठते थे, वैसे ही ध्यानस्थ बैठे हुए छत से लटक रहे पंखे से लगे हुए हैं । पंखे का कोई ब्लेड उनके सर से लगा हुआ था जिसके कारण वे और ऊपर नहीं उठ सके थे । लगता था कि जैसे वे बैठे हुए पूजा कर रहे हैं । अन्तर केवल इतना ही था कि नीचे वे जमीन पर बिछे आसन पर बैठकर पूजा करते थे, ऊपर भी वे बैठे हुए पूजा कर रहे थे किंतु नीचे के निकट की हवा ही उनका आसन बन गई थी ।

कमरे में कोषाधिकारी महोदय के परिवार के लोग थे । और पड़ोस में रहने वाले एक परिवार के कुछ सदस्य भी थे । किसी की समझ में नहीं आया कि कोषाधिकारी महोदय को उसी ध्यानस्थ अवस्था में कैसे नीचे उतारा जाय जिससे वे नीचे आकर पुन: पूजा के आसन पर विराजमान हो सकें और उन्हें चोट भी न लगे ।

महिला अधिकारी ने अपनी प्रशासनिक बुद्धि से तत्काल इसका हल निकाला । तीन चौकियाँ मँगवाई गईं जो एक पर एक रखी गईं । फिर सबसे ऊपर की चौकी पर दो बलिष्ठ युवक चढ़े । कोषाधिकारी महोदय को उसी समाधिस्थ अवस्था में दोनों तरफ से इन युवकों ने पकड़ा और हल्का-सा बल-प्रयोग करते हुए उन्हें सबसे ऊपरी चौकी पर आसीन कर दिया । ये युवक उन्हें चौकी पर आसीन करके भी पकड़े रहे कि कहीं कोषाधिकारी महोदय पुन: ऊपर न उठ जायें । उन्हें अधिक देर प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी । लगता है इस समूची प्रक्रिया ने कोषाधिकारी महोदय की समाधिस्थ अवस्था में व्यवधान डाला और सबसे ऊपरी चौकी पर आसीन होने के कुछ ही समय पश्चात् कोषाधिकारी महोदय की आँखें खुल गईं । पहले तो वे कुछ समझ ही नहीं सके कि माजरा क्या है । फिर बलिष्ठ युवकों द्वारा अपने को जकड़े हुए देखकर सारी बात अपने आप उनकी समझ में आ गई । धीरे-धीरे चौकियों के सहारे वे भी नीचे उतरे और फिर दफ्तर जाने की तैयारी में लग गए ।

यह बात पूरी कॉलोनी में आग की तरह तैरह फैल गई और कोषाधिकारी महोदय वंदनीय व्यक्तियों में गिने जाने लगे । यह घटना स्वयं अपने में उनकी आध्यात्मिक ऊँचाई का परिचय जो थी ।

जमीन से ऊपर हवा में (2)

जमीन से ऊपर हवा में उठ जाना आज के समय में दुर्लभ जरूर है किन्तु असम्भव नहीं । पिछली बार मैंने आपसे एक कोषाधिकारी महोदय की बाबत जिक्र किया था जो पूजा की समाधिस्थ अवस्था में अपने पूजा-कक्ष में जमीन से ऊपर उठकर छत से लटके पंखे के ब्लेड से जा लगे । गनीमत यह थी कि मौसम हेमन्ती था जब पंखे नहीं चलते हैं ।

जमीन से ऊपर उठने की इस प्रक्रिया को अंग्रेजी में लेविटेशन (Levitation) कहते हैं जिसका शब्दकोषी अर्थ है 'आध्यात्मिक शक्ति द्वारा जमीन से व्यक्ति का स्वयं हवा में उठ जाना।' जैसे अपने देश में योगियों के करिश्मे कभी-कभार देखने-सुनने को मिल जाते हैं, उसी प्रकार पश्चिम में भी इस प्रकार के अविश्वसनीय प्रसंग कभी-कभार सामने आते हैं। ये प्रसंग अविश्वसनीय से विश्वसनीय तभी बनते हैं जब ऐसी घटना के प्रत्यक्षदर्शी गवाह घटना के समय वहाँ मौजूद हों।

पश्चिम की ऐसी ही एक घटना के साथ जोसॅफ का नाम जुड़ा हुआ है। उन्हें हवा में उड़ने वाला साधु भी कहकर जाना जाता है। जोसॅफ का जन्म इटली में वर्ष 1603 में हुआ। बचपन में वे शरीर से तो कमजोर थे ही, मस्तिष्क भी बहुत प्रखर नहीं था। अक्सर ही उनके प्राय: खुले हुए मुँह के कारण उनकी पहचान 'खुले जबड़े वाले' बालक के रूप में पड़ोसी करते थे।

इस बालक के साथ एक अद्भुत बात थी। कभी-कभी रहते-रहते वह अति आह्लाद की अवस्था में चला जाता, जिसे अंग्रेजी में 'एॅक्सटैसी' (Ecstasy) कहते हैं। सत्रह वर्ष की अवस्था से ही वह चर्च की सेवा में भर्ती हो गया और कुछ दिनों बाद जब वह 22 वर्ष का हुआ, उसे पादरी का पद दे दिया गया। इस बालक में एक और खास बात थी जो इस बालक को सामान्य बालकों से भिन्नत्व देती थी। अक्सर ही यह बालक अपने को भूखे रखकर स्वयं को प्रताड़ित करता।

पादरी होने के पश्चात् एक दिन गिरजाघर में ही एक अद्भुत घटना घटी। प्रार्थना चल रही थी और तभी परम आह्लाद के किसी क्षण में जोसॅफ जमीन से हवा में उठ गया और हवा में उड़ते हुए चर्च के मंच पर रखे उस टेबिल तक पहुँच गया जिस पर आराधना के समय मोमबत्तियाँ जलाई जाती हैं। इन जलती मोमबत्तियों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह पुन: सभागार में अपने स्थान तक हवा में उड़ता हुआ वापस आ गया। इस पूरी घटना का समूचा सभागार गवाह था।

जोसॅफ के बचपन का नाम जिउसेप्पे देसा था। बाद में वह संत जोसॅफ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके चर्च ने उसे पोप के समक्ष अपने को पेश करने को कहा। उस समय भी जोसॅफ इतना आह्लादित हुआ कि वह हवा में उठ गया। ऐसा लगता था कि जब भी जोसॅफ परम आह्लाद के क्षणों में होता था वह जमीन से हवा में सहज रूप से उठ जाता। हमारे देश में कुछ योगी भी समाधिस्थ हो जमीन से हवा में उठ जाते हैं। यह भी जरूरी नहीं था कि कोई धर्म का प्रसंग ही चल रहा हो जब जोसॅफ को हवा में उड़ते देखा गया। एक बार तो ऐसा हुआ कि जब बड़े दिन के त्यौहार क्रिसमस पर चर्च के प्रांगण में कुछ भेड़ चराने वाले बासुरी बजा रहे थे, तभी जोसॅफ इतना आह्लादित हुआ कि वह हवा में उड़ते हुए चर्च में मंच पर रखे टेबिल (आल्टर) पर पहुँच गया जहाँ मोमबत्तियाँ जल रही थीं। मोमबत्तियों से

न वह स्वयं जला न मोमबत्तियों से उसका कोई वस्त्र जला। चर्च में जो वरिष्ठ अधिकारी थे उन्होंने जोसॅफ से वापस आने को कहा और वह हवा में उड़ता हुआ पुनः चर्च के सभागार में अपने स्थान पर जा बैठा। इस बात का सारा सभागार गवाह बना। क्या यह कोई जादू था ? जहाँ तक हम लोग जानते हैं, जोसॅफ किसी हठयोग में भी दीक्षित नहीं था। यह कहा जा चुका है कि कभी-कभी बिना किसी धर्म के प्रसंग के भी आह्लाद के क्षणों में जोसॅफ को हवा में उड़ते देखा गया। फिर क्या यह कोई ऐसी शक्ति थी जो व्यक्तिगत थी या जो केवल उसे प्राप्त थी ?

सच पूछिये तो यह नैसर्गिक शक्ति हम-आप सभी को प्राप्त है। अज्ञानतावश लोग इस शक्ति को अलौकिक मानने लगे। धीरे-धीरे हम-आप अपनी ही नैसर्गिक क्षमता भूलते चले गये। समाधि की अवस्था में एक कोषाधिकारी को अपने ही देश में हवा में उठे हुए देखा गया। समाधिस्थ योगियों के लिए तो वह सामान्य बात है। ऐसा लगता है कि परम आह्लाद के क्षणों में जब उस परम सत्ता से, जो स्वयं आनन्दमय है, व्यक्ति का सान्निध्य होता है—व्यक्ति एकात्म होता है, तब ईश्वर का अंश यह जीव (जो हम-आप सभी हैं) उस आनन्द के सागर की ओर सहज रूप से उठने को उन्मुख होता है और बिना कठिनाई के थोड़ी उँचाई तक उठ भी जाता है। योगियों की बात अलग है जो किरणों की गति से जब जहाँ चाहें पहुँच सकते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जोसॅफ को हवा में उड़ते देखा गया। इसके गवाह न केवल सभागार में बैठे लोग थे, अनेक अवसरों पर इसके प्रत्यक्षदर्शी साक्षी राजा, महाराज, ड्यूक और स्वयं पोप भी हुए। इतना ही नहीं, इस अतीन्द्रिय अवस्था में जोसॅफ के लिए किसी भारी वजन वाले समान को हल्के-फुल्के ढंग से उठा लेना कठिन नहीं था। कहा जाता था एक भारी वजन वाले लकड़ी के 'क्रॉस' (Cross) को उठाने के लिए कुछ मजदूर प्रयासरत थे कि इसे उठाकर बनाये हुये निर्धारित स्थान पर लगा दें। क्रॉस भारी वजन का था और वे उसे उठा नहीं पा रहे थे। तभी जोसॅफ वहाँ पहुँच गया। आह्लाद के क्षणों में वह हवा में उठा और समूचे 'क्रॉस' को हाथ में उठाये हुए वह निर्धारित स्थान तक 'क्रॉस' को ले गया और 'क्रॉस' के लिए बने हुए छेदों में 'क्रॉस' को डालकर क्रॉस को टाँग दिया।

लगभग 60 वर्ष की अवस्था में जोसॅफ की मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु के लगभग 104 वर्षों के पश्चात् सैकड़ों साक्षियों के साक्ष्य पर विश्वास करते हुए चर्च ने उन्हें संत का दर्जा दिया और वे 'संत जोसॅफ' के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

जैसा कह चुका हूँ यह नैसर्गिक शक्ति आप सबमें है जिसे हम अपनी अबोधता में भूल बैठे हैं और यह मानकर चलते हैं कि या तो यह आध्यात्मिक साधना का फल है या किसी व्यक्ति विशेष को विशिष्ट रूप से प्रदत्त ईश्वरीय शक्ति है। हम-

आप सभी ईश्वर के अंश होने के नाते परम आह्लाद के क्षणों में जब तरंगित होते हैं, उस आनन्द के सागर से एकात्म हो जाते हैं और उन पवित्र क्षणों में नैसर्गिक रूप से उस परम पिता की ओर उसी तरह से हम उन्मुख होते हैं जैसे गोधूलि बेला में पंछी अपने नीड़ की ओर। उन परम आह्लाद के क्षणों में सहज रूप से हम-आप सबके लिए जमीन से उठकर हवा में स्थित होना, कुछ दूर हवा में उड़ते चले जाना—पुनः अपनी जगह पर आ जाना, पूर्णतया सम्भव है—उस नैसर्गिक क्षमता का जागरण है जिसे हम-आप भूल बैठे हैं और भ्रम में जादूगरी या विशिष्ट शक्ति मान बैठे हैं।

*

एक अद्भुत तांत्रिक

बिहार राज्य के महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल) श्री महावीर प्रसाद मेरे पिता के मित्र थे तथा हमारे रिश्तेदार थे । अक्सर वह बनारस आते थे । एक बार वह गंभीर रूप से अस्वस्थ हुए और बनारस की उनकी यात्रा कुछ अन्तराल के पश्चात् हुई जब वे स्वस्थ हो गये ।

स्वस्थ होने पर वे मेरे पिता से मिलने आये और उन्होंने जो बात बतलाई वह काफी हैरतअंगेज़ थी । तभी मुझे पहली बार तांत्रिक चैटर्जी के बारे में जानकारी हुई । महावीर बाबू ने यह बात शायद वर्ष 1949-50 में कहीं थी ।

महावीर बाबू ने बतलाया कि वे अचानक गंभीर रूप से अस्वस्थ हो गये जब वे दिल्ली से पटना लौट रहे थे । वे सुप्रीमकोर्ट में किसी मुकदमें में बहस करने गये थे । कुछ महीने बीत गये किन्तु उनका ज्वर उतरने का नाम नहीं ले रहा था । पटना मेडिकल कॉलेज के बड़े-बड़े डॉक्टर नहीं तय कर पा रहे थे कि आखिर बीमारी क्या है और इसका क्या इलाज है ? फिर उन्होंने तांत्रिक चैटर्जी का सहारा लिया । उनकी तंत्र विद्या की ख्याति पूरे पटना में छाई हुई थी ।

तांत्रिक चैटर्जी ने महावीर बाबू का चित्र लिया । उनके इलाज के सारे पुर्जे लिये और अपने गुरु महाराज के चित्र के साथ उन्हें अपने पूजा के घर में रात में रख दिया । साथ में सादे पन्ने और पेन्सिल भी रख दी गई थी । रात में चैटर्जी ने अपने गुरु महाराज का आह्वान किया और मानसिक रूप से महावीर बाबू की समस्या पर अपने ढंग से निवेदन किया ।

महावीर बाबू का कहना था कि इस प्रकार समस्या को जानकर तांत्रिक के स्वर्गीय गुरु महाराज, अपने दिवंगत गुरु महाराज का सान्निध्य करते थे जो उस समस्या के समाधान हेतु ऐसी आत्मा से सम्पर्क करते जो अपने समय में उस क्षेत्र के विशेषज्ञ थे । ऐसी ही एक आत्मा ने पूजा-घर में उन सादे पन्नों पर समस्या पर विचारोपरांत रोग का निदान किया । कारण और उपचार लिखा ।

महावीर बाबू के अनुसार अगली सुबह जब तांत्रिक चैटर्जी पेन्सिल से लिखे कागज ले आये, उससे जो बात उजागर हुई वह यह थी । दिल्ली से पटना लौटते समय महावीर बाबू जिस 'ए०सी० क्लास' में थे उसमें उनके पूर्व कोई विदेशी यात्रा कर चुका था । वह इसी रोग से पीड़ित था जिस रोग का संक्रमण महावीर बाबू को लगा । वातानुकूलित कम्पार्टमेंट होने के नाते रोग के वे विषाणु कम्पार्टमेंट के बाहर नहीं आ सके जिसमें बाद में महावीर बाबू ने यात्रा की । महावीर बाबू संक्रमण के

शिकार हुए जिसका सही उपचार भी उस विशेषज्ञ आत्मा ने उन्हीं पन्नों पर लिख दिया था। वह एक अति प्रसिद्ध चिकित्सक की आत्मा थी जिसने यह निदान और उपचार लिखा था।

महावीर बाबू ने पटना के अपने चिकित्सकों से परामर्श किया। वे उस लेख को पढ़कर चमत्कृत रह गये और तत्काल अनुमोदन कर दिया। महावीर बाबू स्वस्थ हो गये।

देवी की विभूति

जो आपसे कहने जा रहा हूँ उसे आप मात्र संयोग मानें। किन्तु ऐसी घटना घटी जिसे आपकी जानकारी में केवल इसलिए ला रहा हूँ कि यदि आप बिना पूर्ण ज्ञान के, बिना समर्थ गुरु के निर्देशन के, महज अपने द्वारा की गयी पूजा के बल पर किसी इच्छित परिणाम को लेकर संकल्प करेंगे तो फिर इच्छित परिणाम के साथ कुछ आनुषंगिक परिणाम भी भुगतने को तैयार रहिए।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि संसार के मंच पर पूर्व नियोजित क्रम से मंचन होता है। पात्र अपना-अपना किरदार उसी तरह से अभिनीत करते जाते हैं जैसे पूर्व नियोजित है। इसमें किसी को हस्तक्षेप करने की आज्ञा नहीं है और न यह हस्तक्षेप किसी के बस की बात है। किन्तु जब मंचन दैवी विधान से चल रहा है तो देव शक्ति या दैवी इच्छा से हस्तक्षेप संभाव्य है। अब यदि आपने अपनी पूजा के बल पर अपने आराध्य से जो अनुनय-विनय की है और जिस बात के घटित होने का संकल्प लिया है—वह यदि ऐसी बात है जो आपके संकल्प के बिना भी पूर्व नियोजित थी और वह उस प्रकार से घटती ही—चाहे आप संकल्प लेते या न लेते तो फिर आपके संकल्प के बावजूद आपको कोई आनुषंगिक परिणाम नहीं भुगतना पड़ेगा। जो घटना घटी उसे तो घटना ही था—आप अपने आराध्य से इस बाबत प्रार्थना करते या न करते। यह दूसरी बात है कि आपके संकल्प के अनुरूप घटना के घटित होने के कारण आप उसे अपनी संकल्प शक्ति का परिणाम मानकर हर्षित हो रहे हैं। उस घटना को तो घटना ही था क्योंकि ऐसा ही ऊपर वाले ने पूर्वनियोजित कर रखा था।

किन्तु यदि पूर्व नियोजन में आपकी प्रार्थना या आपके द्वारा किये गये धार्मिक उपाय के कारण हस्तक्षेप होता है और आपकी आध्यात्मिक ऊर्जा उस पूर्व नियोजित मंचन को संशोधित करती है तो फिर आपको आनुषंगिक परिणाम भुगतने के लिए तैयार रहना चाहिए। क्योंकि किसी न किसी को तो हस्तक्षेप के कारण जो पूर्व नियोजन का नैसर्गिक संतुलन बिगड़ा, उसकी क्षतिपूर्ति प्राकृतिक नियमों के अधीन करनी ही पड़ेगी। हाँ, यह हस्तक्षेप यदि कोई समर्थ गुरु करता है तो बात दूसरी है—शायद इसलिए कि वह क्षतिपूर्ति के समुचित समाधान की व्यवस्था जानता है और यह जानकारी किसी आनुषंगिक परिणाम के गाज को गिरने से रोकती है या आनुषंगिक परिणाम को बहुत हल्का-फुल्का बना देती है। मैं तो यही कहूँगा कि यदि समर्थ गुरु के बिना हस्तक्षेप उस मंचन में किया जा रहा है जो पूर्व नियोजित है तो आपको अपनी पूजा या आध्यात्मिक ऊर्जा के बल पर हस्तक्षेप करने का प्रयास नहीं करना चाहिए अन्यथा आध्यात्मिक क्षेत्र में आपके द्वारा की गयी नीम हकीमी के

आनुषंगिक परिणाम अवतरित होंगे जो आपके मन में पश्चात्ताप जगायेंगे और आप अपने से ही कहेंगे 'मैंने यह क्या कर डाला ?'

पर जैसा मैं आपसे कह चुका हूँ आप इस घटना को मात्र संयोग मानें। इस घटना में आये पात्र अत्यंत विशिष्ट हैं। मुमकिन है, मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह मेरा भ्रमपूर्ण निष्कर्ष है। किन्तु मैं स्वयं इसे संयोग नहीं मानता और उस हस्तक्षेप का आनुषंगिक परिणाम मानता हूँ जिसका उल्लेख ऊपर कर चुका हूँ। इसीलिए आपसे निवेदन कर रहा हूँ कि कभी आप किसी भावना के आवेश में ऐसा हस्तक्षेप न कर बैठें। यदि यह हस्तक्षेप नहीं भी है और मात्र भ्रमपूर्ण निष्कर्ष है तो भी इससे बचकर रहने में शांति है—इसके प्रयोग में आनुषंगिक परिणाम का खतरा है, जब तक आप स्वयं समर्थ गुरु न हों, या किसी समर्थ गुरु के निर्देश में ऐसा न कर रहे हों। नीम-हकीमी हर क्षेत्र में वर्जित है चाहे वह चिकित्सकीय क्षेत्र हो चाहे अध्यात्म का क्षेत्र।

संभवत: वर्ष 1974 की बात है। लगभग 30 वर्ष व्यतीत होने को आ रहे हैं। यादें धुँधली होती जा रही हैं। फिर भी जैसी घटना घटी, जैसे तथ्य मेरी जानकारी में आए उनको लेखबद्ध कर रहा हूँ। यद्यपि यह सब कुछ मात्र संयोग हो सकता है, मात्र भ्रमपूर्ण निष्कर्ष हो सकता हैं। यह भी संभव है कि मेरी जानकारी में जो कुछ तथ्य आए वह जलने वालों का दुष्प्रचार भी हो सकता है क्योंकि अति विशिष्ट व्यक्तियों के अनेक शत्रु होते हैं।

उस समय मैं विधान परिषद् उत्तर प्रदेश के सचिव पद पर प्रतिनियुक्त था। विधान परिषद् के सभापति के रूप में डॉ० वीरेन्द्र स्वरूप पदासीन थे। कार्य के सिलसिले में सम्मानित सभापति होने के पूर्व डॉ० वीरेन्द्र स्वरूप कांग्रेस के विशिष्ट स्तंभ थे। सभापति बन जाने के बाद वे कांग्रेस की सक्रिय राजनीति से विलग होकर तटस्थ हो गये। सभापति के रूप में उनसे निष्पक्ष 'अंपायर' या निर्णायक की अपेक्षा सदन करता था। इस अपेक्षा पर डॉ० वीरेन्द्र स्वरूप खरे उतरे और विधायकों का सम्मान अर्जित किया।

तभी सभापति की अवधि पूरी होने के सन्दर्भ में माननीय विधायकों द्वारा अगले सभापति के चयन का प्रश्न उठा। सदन में कांग्रेस पार्टी के विधायकों का बहुमत था। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री हेमवंतीनन्दन बहुगुणा थे। डॉ० वीरेन्द्र स्वरूप सभापति पद के लिए निर्विरोध पुन: चुन लिए गये होते किन्तु एक अन्य सम्मानित सदस्य, विधान परिषद् का नाम भी इस प्रसंग में उभरा जो इस पद के लिए डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप के प्रतिद्वंद्वी के रूप में सामने आए। इनका नाम अभिलेख पर लाने की आवश्यकता मैं नहीं समझता हूँ क्योंकि अंतत: मतदान जैसी कोई औपचारिक प्रक्रिया घटित नहीं हुई।

कांग्रेस पार्टी के सम्मानित विधायकों में विधान परिषद् के सभापति के पद के संदर्भ को लेकर कोई मतभेद न हो और पार्टी में कोई टूटन न हो इसके लिए यही तय किया गया कि प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के निर्णय के अनुसार ही सदन के सम्मानित विधायक माननीय सभापति के पद पर इन दोनों हस्तियों में से उस हस्ती को चयनित करेंगे जिनके नाम का अनुमोदन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने किया हो । चयन सदन के माननीय विधायकों को करना था । कांग्रेस पार्टी बहुमत में थी । इसीलिए कांग्रेस पार्टी के माननीय विधायक एक मत से जिसका भी नाम चयनित करते, उन्हें निर्विरोध सभापति का सम्मानित आसन मिलना निश्चित था । अन्यथा मतभेद की दशा में पार्टी के टूटने के अतिरिक्त, कौन बनेगा सभापति का प्रश्न भविष्य ही उत्तरित करता ।

इंदिराजी का निर्णय जानने के लिए यही तय हुआ कि मुख्यमंत्री श्री हेमवती-नंदन बहुगुणा दिल्ली जाकर इंदिराजी से सम्पर्क करें और उनके समक्ष कांग्रेस पार्टी के दोनों सम्मानित सदस्यों का नाम रखें जिनमें से एक को विधान परिषद् के सभापति के रूप में कांग्रेस पार्टी के माननीय विधायकों को इंदिराजी के निर्णयानुसार एक स्वर से चयनित करना था । इसके बाद तो कोई रुकावट ही नहीं थी । कांग्रेस पार्टी सदन में बहुमत में थी ।

मुख्यमंत्री श्री बहुगुणा तदनुसार हेलिकॉप्टर से दिल्ली गये । इंदिराजी के निर्णय की जानकारी ली कि उनकी इच्छा किसके पक्ष में है, डॉ० वीरेन्द्र स्वरूप के पक्ष में अथवा प्रतिद्वंद्वी (जिनका नाम मैं अभिलेख पर नहीं ला रहा हूँ) के पक्ष में । अगले दिन कांग्रेस पार्टी के विधायकों की सभा एक अलग हॉल में होनी थी जिसमें कांग्रेस पार्टी के सम्मानित विधायक इंदिराजी की इच्छा के अनुसार सभापति पद के लिए एक स्वर से नाम चयनित करते और फिर तो शेष बातें मात्र औपचारिकता ही थीं । औपचारिक रूप से चयनित विशिष्ट माननीय सदस्य सभापति पद पर निर्विरोध आसीन हो जाते ।

हेलिकॉप्टर बहुगुणाजी को लिये वापस अगले रोज लगभग 11 बजे दिन में लखनऊ में उतरा । डॉ० वीरेन्द्र स्वरूप भी अन्य सम्मानित विधायकों के साथ मुख्यमंत्री बहुगुणाजी की अगवानी के लिए गये थे । सचिव, विधान परिषद् के नाते मैं भी अपने सभापति डॉ० वीरेन्द्र स्वरूप के साथ था । मेरी भी उत्कट इच्छा थी कि कुछ संकेत मिल जाए कि किसका चयन उस पद के लिए इन्दिराजी ने किया । उसी चयन के अनुरूप अपराह्न में कांग्रेस पार्टी के माननीय विधायकों की जो सभा होने वाली थी उसमें बहुगुणाजी को औपचारिक रूप से प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी का चयन घोषित करना था जिसके पश्चात् औपचारिक रूप से तदनुसार कांग्रेस पार्टी के सम्मानित विधान परिषद् सदस्यों को एक स्वर से उसी नाम का समर्थन करना था ।

फिर तो सदन में बहुलता के कारण ऐसे चयनित नाम का निर्विरोध सभापति के पद पर चुना जाना सुनिश्चित था ।

मेरी जानकारी की उत्कट इच्छा के पीछे डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप के प्रति मेरी अपनी श्रद्धा के अतिरिक्त अध्यात्म क्षेत्र की मेरे द्वारा सम्पन्न वह क्रिया भी थी जिसके फलीभूत होने का मुझे पूर्ण विश्वास था । मैं जानना चाहता था कि देवी माँ से की गयी मेरी प्रार्थना माँ ने सुनी या नहीं ।

मुख्यमंत्री श्री बहुगुणा के लिए जब यह तय हो गया कि वे दिल्ली जाकर इंदिराजी की इच्छा जानेंगे और तब सदन के कांग्रेस पार्टी के विधायक एक स्वर से उसी नाम को चयनित करेंगे, तभी मैंने माननीय सभापति डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप के नाम के चयन के लिए देवी माँ से प्रार्थना की थी । देवी माँ के सामने पड़ी पूजा की थोड़ी सी भभूत और कुछ फल को डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप को देते हुए मैंने उनसे अनुरोध किया था—'इसे आप अपने पास निर्विरोध चुने जाने तक रखें और चुनाव वाले दिन भभूत का टीका भी माथे पर अथवा हृदय-स्थल पर लगा लें । भगवती आपका कल्याण करेंगी ।'

डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप के मित्र भी थे, शत्रु भी थे । उनके अतिरिक्त डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप के जो प्रतिद्वंद्वी थे उनके भी अनेक मित्र दिल्ली में महत्वपूर्ण पदों पर थे ।

फिर क्या हुआ—इंदिराजी ने बहुगुणाजी से क्या कहा, इसकी मुझे कोई व्यक्तिगत जानकारी नहीं । मेरी जानकारी में जो बात आई वह लिख रहा हूँ । हो सकता है इस जानकारी का स्रोत डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप के विरुद्ध उनसे जलनेवालों द्वारा किया गया दुष्प्रचार हो । डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप के विरोधियों का भी एक खेमा था जो नहीं चाहता था कि डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप विधान परिषद् के सभापति के पद पर पुन: चयनित हों ।

जानकारी मुझे यह मिली (अब यही नहीं जानता कि बात सही थी या दुष्प्रचार) कि इंदिराजी ने डॉ० वीरेन्द्र स्वरूप के प्रतिद्वंद्वी का नाम अनुमोदित किया और यही नाम बहुगुणाजी को माननीय विधायकों के समक्ष घोषित करना था जब कांग्रेस पार्टी के सम्मानित सदस्यों की सभा उस दिन अपराह्न में सभागार में होने वाली थी जो सभापति के पद का चयन एक स्वर से इंदिराजी की इच्छा के अनुसार करती ।

हेलिकॉप्टर से जब श्री बहुगुणा उस महत्वपूर्ण दिन इंदिराजी का निर्णय जानकर उतरे, उन्होंने केवल मुस्कुराहट, अगवानी करनेवाले उन माननीय सदस्यों के समक्ष बिखेरी जो उनके स्वागत के लिए पहुँचे थे । कोई भी संकेत इस बात का नहीं दिया कि आखिर इंदिराजी ने किस नाम को अनुमोदित किया । जाहिर बात है हमारे माननीय सभापति डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप, माननीय सदस्यगण, स्वयं मैं तथा समस्त सचिवालय उत्सुकता से उस घड़ी का इंतजार कर रहे थे जब बहुगुणाजी इंदिराजी के निर्णय को सभागार में घोषित करें ।

मुख्यमंत्री बहुगुणाजी को जो लोग निकट से जानते थे उनकी जानकारी में यह बात होगी कि बहुगुणाजी अत्यन्त योग्य तो थे ही, बहुत खुश-मिजाज थे और स्वयं ऐसी स्थितियों का सृजन कर देते थे जिनमें हर्ष भी हो और साथ ही उत्सुकता या कौतुहलता का माहौल भी ।

मैंने सुना (और जैसा कह चुका हूँ यह जरूरी नहीं कि मैंने जो सुना वह सत्य ही था) कि इंदिराजी ने डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप के प्रतिद्वंद्वी का नाम सभापति पद के लिए चयनित किया । इस नाम को घोषित करने के लिए मुख्यमंत्री श्री बहुगुणा ने अपना हँसाने वाला तरीका अपनाया । सभागार में वे खड़े हुए । सभी एकत्रित माननीय सदस्य उनकी तरफ प्रतीक्षारत आँखों से देख रहे थे । बहुगुणाजी ने बजाए सीधे-सादे ढंग से कहने के कि इंदिराजी ने डॉ०वीरेन्द्रस्वरूप के प्रतिद्वंद्वी को चयनित किया, इस प्रकार से प्रस्तुति की, 'सभापति पद के लिए माननीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप.....।' बहुगुणाजी (अगर सुनी बात सत्य थी) शायद यह कहना चाहते थे कि माननीय 'इंदिरा गांधी जी ने डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप का नाम चयनित नहीं किया और इसके पश्चात् जिनका नाम इंदिराजी द्वारा चयनित किया उन डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप के प्रतिद्वंद्वी का नाम घोषित करते । घोषणा का यह रूप बहुगुणाजी की उस विशिष्ट शैली के अनुरूप था जिसमें थोड़ी हँसी, कौतूहलता और थोड़े विनोद का मिश्रण देखा जा सकता था । (यह सुनी बात कितनी सत्य थी या पूर्णतया दुष्प्रचार थी यह हम नहीं जान सके ।) विरोधी खेमे में चर्चा थी कि इसके पूर्व कि बहुगुणाजी यह पूरा वाक्य कह पाते कि सभापति पद के लिए डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप का नाम चयनित नहीं हुआ और उनके प्रतिद्वंद्वी का नाम चयनित हुआ; जैसे ही उन्होंने ये शब्द कहे, 'सभापति पद के लिए डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप.....'तत्काल समस्त सभागार एक स्वर से बोल उठा 'डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप जिंदाबाद, डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप जिंदाबाद ।'—सभापति के पद के लिए चयन करने का अधिकार सदन के माननीय सदस्यों का ही था । यह दूसरी बात थी कि माननीय सदस्यों ने अपने विवेक का प्रयोग प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के निर्णय के आलोक में करने का निश्चय लिया था । अत: जब सदन के माननीय सदस्यों ने 'डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप जिन्दाबाद' के नारों से डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप का अभिनन्दन किया तो फिर यह गूँज माननीय सदस्यों के ध्वनिमत द्वारा लिए गए निर्णय की परिचायक थी । सत्य था या असत्य यही सुना कि मुख्यमंत्री बहुगुणाजी इस अप्रत्याशित घटना के लिए तैयार नहीं थे । पर वे भी क्या कर सकते थे जबकि माननीय सदस्यों ने एक स्वर से अपना मत डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप के पक्ष में घोषित कर दिया । विरोधी खेमें की यह बात मात्र दुष्प्रचार थी या सत्य का कुछ अंश लिए थी—यह मैं नहीं जान सका ।

इसके पश्चात् माला-फूलों से लदे डॉ० वीरेन्द्र स्वरूप ने सदस्यों के प्रति हाथ जोड़कर अपना आभार व्यक्त किया । मैं भी हर्षित था । एक तो डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप के चयन पर, दूसरे इस बात पर कि देवी माँ ने मेरी प्रार्थना स्वीकार की ।

सदन में पुनः डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप सभापति के पद पर आरूढ़ हुए। सचिव के रूप में मैं मंच पर उनकी बाईं ओर बैठता था।

तभी सदन चलने के कुछ दिनों के पश्चात् मुझे ऐसा लगने लगा कि कार्रवाई के दौरान कोई अदृश्य वातचक्र सदन में घूम रहा है जो मुझसे टकराता, पुनः सदन की दीवारों से टकराता। यह अनुभव केवल मेरा था। वातानुकूलित सदन के कक्ष के बाहर से किसी हवा के झोंके की गुंजाइश नहीं थी—आँधी-तूफान का तो कोई सवाल ही नहीं उठता था। यह अनुभूति व्यक्तिगत थी और किसी माननीय सदस्य को ऐसी अनुभूति नहीं हुई। डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप से कुछ पूछने का मेरा साहस ही नहीं हुआ। किन्तु जब भी सदन चलता था यह अनुभूति मुझे होती थी कि सदन के अन्दर कोई वातचक्र घूम रहा है जो सदन की दीवालों से टकराता हुआ मुझसे टकराता है। मैंने इसे इस रूप में देखा कि शायद यह नैसर्गिक प्रतिक्रिया मेरी उस आध्यात्मिक क्रिया की है जिसे मैंने डॉ०वीरेन्द्र स्वरूप के पुनर्निर्वाचन के सन्दर्भ में किया था जो शायद मेरे द्वारा दैवी पूर्व नियोजन में हस्तक्षेप था। संकल्प तो पूर्ण हुआ जब डॉ० वीरेन्द्र स्वरूप सभापति बनें किन्तु प्रतिक्रिया रूप में आनुषंगिक परिणाम को मुझे झेलना होगा जिससे हस्तक्षेप के कारण जो असंतुलन हुआ उसकी क्षतिपूर्ति भरी जा सके।

विधान परिषद् के सचिव का पद शासन के किसी भी सचिव के पद के समान था। विधान परिषद् के पूरे सचिवालय का सचिव प्रशासनिक अधिकारी था।

अत्यन्त महत्वपूर्ण पद होने के साथ ही मुझे निवास के लिए विक्रमादित्य मार्ग पर डिप्टी मिनिस्टरों के लिए सुरक्षित एक बँगला भी मिला था। फिर भी मैंने घुमड़ते वातचक्र से (जिसका अनुभव केवल मैं ही करता था) यह संदेश पाया, इस नतीजे पर पहुँचा कि अब मुझे सचिव के पद पर आसीन नहीं रहना चाहिए। और फिर मैं वर्ष 1974 में ही माननीय उच्च न्यायालय से अनुरोध कर न्यायिक सेवा की मूल धारा में वापस आ गया और अपने नगर वाराणसी में ही अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश के रूप में कार्यरत हो गया।

उत्तर प्रदेश राज्य ने सचिव-विधान परिषद् के रूप में मेरी सेवाओं के सन्दर्भ में, उत्कृष्ट एवं सराहनीय सेवा के लिए तथा साहित्यिक एवं सांस्कृतिक योगदान के लिए मुझे सम्मान पत्र एवं सम्मान राशि प्रदान की। विधान परिषद् के सचिव पद की यह एक अतिविशिष्ट यादगार है।

समापन में कहना चाहूँगा कि संभावना या सत्य यही है अथवा यही पूर्णतया सत्य है कि इंदिराजी ने डा०वीरेन्द्र स्वरूप को ही चयनित किया था और उन्हीं का नाम बहुगुणाजी ने घोषित किया था जिसका एक स्वर में अनुमोदन हुआ।

*

दैवी हस्तक्षेप

वर्ष 1977 की बात है । तब मेरा पद अतिरिक्त जिला जज का था । जिला जज बनने में थोड़ा समय था । मैं उस समय गोरखपुर में सेवारत था । बनारस आने-जाने के लिए गोरखपुर-बनारस बस सेवा काफी सुविधाजनक थी । एक शनिवार की शाम मैं अकेले ही गोरखपुर से बनारस के लिए बस पर सवार हुआ । मेरे पास अटैची थी जिसे मैंने सीट की बगल में रख दिया था । तब बस में बहुत भीड़ नहीं चलती थी । मेरी बगल की सीट खाली पड़ी थी । बस लगभग एक घंटे चली होगी, तभी आगे की पंक्ति में बैठे एक अत्यन्त सौम्य पुरुष मेरी बगल की सीट पर आकर बैठ गये और मुझसे व्यक्तिगत बातें करने लगे । उनकी बात करने की शैली, अंग्रेजी भाषा पर अधिकार, पहनावा और तहजीब किसी को भी प्रभावित करने के लिए पर्याप्त थे । मैं भी प्रभावित हुआ ।

बातचीत के सिलसिले में उन्होंने मुझसे कहा कि वे दिल के मरीज हैं पर पुरखों ने इतना धन छोड़ रखा है कि वे अपनी दवा सीधे स्विट्जरलैंड की निर्माता कम्पनी से मँगाते हैं और साल में दो बार 'मेडिकल चेकअप' के लिए स्विट्जरलैंड जाते हैं । जाहिर बात है इस जानकारी का प्रभाव किसी पर भी पड़ सकता था ।

बातचीत के चलते हम चंदौली पहुँच गए जो उस समय वाराणसी जनपद का एक भाग था । वे महाशय उतरे और कुछ फ़ासले पर स्थित चाय की दुकान तक गये । मैं बस में ही बैठा रहा । बिजली की व्यवस्था न होने के कारण चाय की दुकान के एक कोने में पेट्रोमैक्स जल रहा था । चाय की दुकान के सामने एक आम का पेड़ था । मेरे सहयात्री जब चाय की दुकान पर चाय ले रहे थे, वे इसी पेड़ के घने तने की ओट में थे । यह एक साधारण बात थी । किन्तु जलते पेट्रोमैक्स के प्रकाश के कारण उनकी परछाईं सामने की जमीन पर पड़ रही थी ।

चाय बनकर जब तैयार हुई तब पेड़ की ओट में ही खड़े उन सहयात्री ने एक हाथ में चाय का पात्र पकड़ा और एक हाथ से जेब से कोई शीशी निकालकर कुछ बूँदें उसी चाय के पात्र में टपका दीं । बस की खिड़की वाली सीट पर बैठे मैंने यह सब कुछ उसी परछाईं के सहारे देखा जो पेट्रोमैक्स के प्रकाश के कारण जमीन पर मेरे सहयात्री की पड़ रही थी । यह भी मुझे कोई असाधारण बात नहीं लगी । बहुत से लोग जो चीनी से परहेज करते हैं, मिठास के लिए इस प्रकार से 'सेकेरीन' जैसी वस्तु लेते हैं जो गोली में भी हो सकती है और तरल रूप में भी । किन्तु चौंकानेवाली बात तब हुई जब उस चाय के पात्र को मेरे सहयात्री ने अपने अधरों से नहीं लगाया ।

उसे लेकर वे धीरे-धीरे बस की ओर बढ़े । चाय का पात्र बढ़ाते उन्होंने कहा—'आप थक गए होंगे, थोड़ी चाय पी लीजिए ।'

और तब मैं चौकन्ना हुआ । यह वही चाय थी जिसमें मेरे सहयात्री ने जेब की शीशी से कुछ तरल पदार्थ डाला था, जिसको मैं छायाचित्र की तरह सहयात्री की परछाईं में देख चुका था । मैं सावधान हो चुका था । उनसे क्षमा माँगते हुए मैंने उनसे कहा—'अभी घर जाकर स्नान-पूजा के बाद ही मैं कुछ ग्रहण कर सकूँगा । इस चाय को आप ही पी लें अन्यथा यह 'वेस्ट' हो जाएगी ।'

मेरे सहयात्री ज़िद पर अड़ गये पर उनकी ज़िद के आगे मैं अपनी सुरक्षा को दाँव पर नहीं लगा सकता था । मैंने उनसे बार-बार अनुरोध किया—'आप ही चाय पी लें, मैं अपने नियम को किसी भी कारण से तोड़ नहीं पाऊँगा ।'

मेरे सहयात्री ने जब यह देखा कि मैं चाय नहीं पीऊँगा और उन्हें ही चाय पीने का बार-बार आग्रह कर रहा हूँ, तब उन्होंने मिट्टी वाले चाय के उस पात्र को झल्लाकर जमीन पर फेंक दिया । पात्र टूट गया, चाय ज़मीन की धूल में मिल गई । वे बस पर चढ़े और जाकर अपनी पुरानी सीट पर बैठ गये, जहाँ उनका सामान रखा था जो जाहिरी तौर पर अपनी भव्यता से अपने स्वामी के एक सम्पन्न व्यक्ति होने का परिचय दे रहा था ।

बनारस आने पर वे अपना सामान लिए-दिए फुर्ती से उतर गए । मैं भी सकुशल घर पहुँच गया ।

मुझे ऐसा लगता है कि पेड़ के घने तने की ओट में छिपे मेरे सहयात्री की सारी करतूत जो उनकी परछाईं से मुझे देखने को मिली, मात्र एक इत्तिफाक नहीं था । यह छाया दर्शन दैवी हस्तक्षेप था जिसने मुझे ज़हरीली चाय के पान से बचाया । पिलानेवाला तो पेड़ के घने तने की ओट में छुपा आश्वस्त था कि मैं उसकी करतूत नहीं देख सकता था ।

*

आनंद की कहानी

मेरा छोटा लड़का आनंद सल्तनत ओमान की राजधानी मस्कट के निकट सरकारी अस्पताल में वरिष्ठ चिकित्सक के रूप में कार्यरत है । शिरडी के दिवंगत साँई बाबा से जुड़ी यह सत्य कहानी उसी ने मुझसे कही थी जब वह पिछली बार घर आया था ।

आनन्द ने मुझे बतलाया कि उनके अस्पताल में यदि किसी मरीज की हालत बिगड़ कर ऐसी स्थिति को पहुँच जाती है कि उसका इलाज मस्कट के सबसे बड़े राज्य अस्पताल में ही संभव है, तो चिकित्सक की यह ड्यूटी है कि सरकारी खर्चे पर एम्बुलेंस में मरीज को मस्कट के बड़े राज्य अस्पताल में ले जाए और वहाँ के वरिष्ठ चिकित्सक को मरीज पर किये गये उपचार की सभी जानकारी दे, और मरीज को उन्हें सौपने के पश्चात् ही वापस अपने अस्पताल, ड्यूटी पर आए । मरीज को बचाने का हर संभव प्रयास किया जाता है और इसका सारा खर्चा राज्य उठाता है । मरीज या उसके परिवार को इसके सम्बन्ध में कोई चिंता नहीं करनी पड़ती है ।

ऐसे ही एक मरीज को एम्बुलेंस में लेकर आनन्द मस्कट जा रहा था । एम्बुलेंस में मरीज और आनंद के अलावा ड्राइवर और गाड़ी के क्लीनर थे । बीच रास्ते में अति प्राचीन दरगाह पड़ती थी जिसमें मीठे जल का कुँआ था । इस कुँए के बारे में क्लीनर ने आनंद को बतलाया कि इसके जल के सेवन से पेट के सभी कष्ट दूर हो जाते हैं । वह मस्कट पहुँच कर दो बड़े-बड़े प्लास्टिक के पानी रखनेवाले पात्र ले आया कि लौटती यात्रा में कुँए का पानी उन्हीं में भरकर वापस ले जाए । यह भी बतलाया कि दरगाह की ओर से हर यात्री के लिए 'काफ़ी' और खाने के लिए खजूर आदि की नि:शुल्क व्यवस्था बराबर रहती है ।

मस्कट पहुँच कर आनंद ने राज्य अस्पताल को अपना मरीज सौंप दिया और आवश्यक चिकित्सा सम्बन्धी परामर्श के पश्चात् वापसी की यात्रा 'एम्बुलेंस' पर शुरू हुई । तब तक क्लीनर प्लास्टिक के दो बड़े-बड़े पात्र बाजार से खरीद लाया था ।

लौटती यात्रा में दरगाह पर ये लोग रुके । काफ़ी और खजूर लेने के पश्चात् कुँए का जल भरपेट पीया । तब क्लीनर कुँए से पानी भरने के लिए दोनों बड़े-बड़े पात्रों को लेकर गाड़ी से उतरा । जिस पहले पात्र में कुँए का पानी भरा गया वह पात्र कहीं से लीक कर रहा था जिससे यह सहज अनुमान लगा कि घर पहुँचते-पहुँचते इस पात्र का सारा पानी चू जायेगा । अब केवल दूसरा पात्र बचा था । इस दूसरे पात्र के ढक्कन को क्लीनर ने खोलने की कोशिश में पूरा जोर लगा दिया पर ढक्कन न

जाने कैसा जाम था कि खुला ही नहीं । ड्राइवर ने भी असफल कोशिश की किंतु ढक्कन था कि हिलने का नाम नहीं लेता था । ड्राइवर और क्लीनर दोनों ही बलिष्ठ युवक थे और जब ढक्कन दोनों से नहीं खुला तब आनंद से कहा—'एक बार आप भी हाथ लगाकर देख लीजिए ।'

आनंद को लगा कि यह एक चुनौती जैसा प्रस्ताव है । आनंद जानते थे कि जब ड्राइवर और क्लीनर जैसे लोग इसको नहीं खोल पाए तो उनसे यह ढक्कन क्या खुलेगा । और तभी उन्हें शिरडी के दिवंगत साईं बाबा के रूप का ध्यान आया । उन्होंने शिरडी के साईं बाबा को मानसिक रूप से नमन करते हुए बिना कोई खास जोर लगाए ढक्कन को सामान्य ढंग से खोलने की कोशिश की । तत्काल जैसे किसी जादूगरी से ढक्कन खुल गया । ड्राइवर और 'क्लीनर' हैरत से कभी आनंद को देखते कभी खुले हुए पात्र को ।

पात्र में पूरा पानी भरा गया । ढक्कन बंद किया गया और पूरी पार्टी एम्बुलेंस से घर वापस लौट आई ।

*

गुड़ियों का नृत्य

जुलाई 1957 में मैंने न्यायिक सेवा का आरम्भ जनपद प्रतापगढ़ में मुन्सिफ के रूप में कार्यरत होकर किया। उस समय प्रतापगढ़ में बिजली तक नहीं आयी थी और पानी के लिए बँगले के बाहर एक प्राचीन कुँआ था। पंखे की व्यवस्था कमरे में लटक रहे विशाल झालरदार पंखे से होती थी जिसे पंखा कुली कमरे के बाहर बैठकर डोर के सहारे खीचता था। जुलाई महीने में यों ही बहुत उमस रहती और कुली आखिर पंखा कितनी देर खींचता। रात में तो पंखा खींचने का सवाल ही नहीं उठता था। रात झपकियों में बीतती थी। कभी-कभी बारिश होने पर अच्छी नींद आती थी। मुन्सफी का नया काम होने से जी-जान से काम में जुटा रहता। अधिक परिश्रम और निरन्तर ठीक से न सो पाने के कारण मैं बहुत थका-थका रहने लगा। फिर एक दिन 'वायरस' के संक्रमण से बीमार पड़ गया। बुखार जो चढ़ा तो उतरने का नाम ही नहीं लेता था। मेरी माँ बिस्तर के बगल में बैठ देवी गीत गातीं और मेरे स्वस्थ होने के लिए प्रार्थना करतीं। परिवार में देवी की पूजा पुरखों के समय से चली आ रही थी। उस समय जनपद में सिविल सर्जन होते थे। मेरे सिविल सर्जन की समझ में नहीं आता था कि आखिर कोई दवा कारगर क्यों नहीं हो रही है—ज्वर क्यों नहीं उतर रहा है। अस्वस्थता के कारण कमजोरी बढ़ती ही जा रही थी और फिर एक रात जब मैं भीतरी बरामदे में सोया हुआ था, कुछ पदचाप की आहट से मेरी नींद खुल गई। आसमान साफ था और चन्द्रमा के प्रकाश में आँगन आलोकित था। इसी प्रकाश की थोड़ी सी आभा बरामदे में भी आ रही थी। नींद खुलने पर मैंने देखा, मेरी ओर मुख किये पलंग के चारों ओर गुड़िया जैसी बालिकाएँ घूम-घूमकर फेरे लगा रहीं थी। उनकी ठीक संख्या तो मैं नहीं गिन पाया, किन्तु अनुमानतः वे नौ या दस थीं। कद का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि केवल उनका सर और गर्दन का कुछ भाग मुझे पलंग पर लेटे हुए दिखलाई पड़ रहा था, जब वे पलंग के चारों ओर मुझे देखते हुए फेरे लगा रही थीं। वह दैवी क्षण था। मुझे अच्छी तरह याद है, मैं तनिक भी भयभीत नहीं हुआ। कुछ देर पलंग के चारों ओर घूमने के बाद वे बालिकारूपी देवियाँ अदृश्य हो गईं और फिर मैं चादर ओढ़ कर बेखबर सो गया।

सुबह रोज की तरह जब बुखार के लिए थर्मामीटर लगा, बुखार गायब था। थर्मामीटर 97 डिग्री फ़ैरेंनहाइट शरीर का ताप बतला रहा था जबकि शरीर का सामान्य ताप 98.4 डिग्री फ़ैरेंनहाइट होता है। दिन भर में कई बार थर्मामीटर लगाया गया पर बुखार का कहीं नामो-निशान नहीं था। फिर कमजोरी धीरे-धीरे खान-पान से दूर होती गई। दवा, दो-तीन रोज़ हरारत के बिल्कुल न रहने के

कारण, सिविल सर्जन ने बंद कर दी और लगभग दस दिन के पश्चात मैं फिर से न्यायालय का काम करने लगा ।

सुबह जब ज्वर एकदम से गायब हुआ, मैंने अपनी माँ से रात की घटना बतलाई थी कि कैसे नौ या दस देवीरूपी बालिकाएँ रात में पलंग के चारों ओर थोड़ी देर घूमती रहीं और फिर एकबारगी गायब हो गईं ।

मेरी माँ ने बतलाया कि हमारे गाँव वाले मकान में कभी नौ दुर्गा की सोने की मूर्तियाँ थीं । उन्हें दो पुश्त पहले जब चोर उठा ले गया तब नौ दुर्गा को गुड़ियों के रूप में पिटारी में रखा गया और पूजा के मुख्य स्थान पर सिंहवाहिनी दुर्गा की चाँदी की मूर्ति स्थापित की गई । पूजा के समय आरती देवी की तो होती ही थी, पूजाघर की ताख पर पिटारी में नौ दुर्गा के प्रतीक के रूप में रखी गुड़ियों की भी आरती होती थी । मेरी माँ का विश्वास था कि पलंग के चारों ओर घूमते मैंने जिन बालिकाओं को देखा, वे वही गुड़ियाँ थीं जो इतनी दूर चलकर मुझे स्वस्थ करने के लिए आयी थीं ।

*

मर्यादा-रेखा

केवल तर्क के आधार पर सभी प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया जा सकता और न सभी रहस्य सुलझाये जा सकते हैं । जिस घटना का उल्लेख करने जा रहा हूँ यह लगभग 39 वर्ष पूर्व की घटना है । वर्ष 1966 में मैं बरेली में सिविल जज के पद पर कार्यरत था । उसी ज़माने में एक सरकारी कार्य से मुझे लखनऊ जाना पड़ा । परिवार बरेली में अकेले छोड़ना चिंता का कारण बनता, इसलिए मैंने तय किया कि सुबह पंजाब मेल से लखनऊ पहुँच जाऊँगा और फिर रात को काठगोदाम एक्सप्रेस से वापस बरेली पहुँच जाऊँगा । देर में ही सही पर रात में घर वापस आ सकूँगा । तय किए हुए कार्यक्रम के अनुसार लखनऊ लगभग 12 बजे दिन में पहुँच गया । मेरी बड़ी बहन का एक राममंदिर लखनऊ में बिरहना रोड मोहल्ले में स्थित है । वहाँ की देखभाल पुजारी करते थे और उसी राममंदिर में आवासीय कक्ष भी था जिसमें मेरी बहन या बहन की ससुराल के लोग लखनऊ जाने पर ठहरते थे । मैं भी इसी राममंदिर में लखनऊ उतरने पर पहुँचा और पुजारीजी के हवाले अटैची कर दी । मंदिर में रामजी के दर्शन किए, प्रणाम किया और फिर सचिवालय पहुँचा ।

सचिवालय में जिन वरिष्ठ न्यायिक अधिकारी से भेंट की उन्होंने मेरे मना करने के बावजूद रात में खाने पर अपने आवास पर बुला लिया । कालिदास मार्ग पर स्थित इस आवास से रिक्शे से बिरहाना रोड तक जाने में लगभग आधा घंटे का समय लगता है । जल्दी-जल्दी करते भी रात के पौने नौ बजे मैंने मेजबान से इजाजत ली । संयोग से चौराहे पर रिक्शा भी मिल गया और मैं लगभग सवा नौ बजें अपनी बहन के राममंदिर पहुँच गया । उस समय जहाँ तक मुझे याद है काठगोदाम एक्सप्रेस साढ़े नौ बजे रात को छूटती थी और लगभग मध्यरात्रि में बरेली पहुँचती थी । राममंदिर से स्टेशन पहुँचने में लगभग 20 मिनट का समय तेज गति से चल रहे रिक्शे पर लगेगा । लगभग यह समय बीत रहा था । और गुंजाइश पाँच मिनट की संभावना की थी । राममंदिर जब पहुँचा तब सवा नौ बज रहे थे । पंद्रह बीस मिनट में अगर स्टेशन नहीं पहुँचा तो फिर गाड़ी नहीं मिलेगी क्योंकि ट्रेन लखनऊ से ही चलती थी । उसी रिक्शे को राममंदिर के बाहर रोककर, रिक्शे पर बैठे ही बैठे मैंने पुजारीजी को आवाज दी और कमरे में से अटैची लाने को कहा । पुजारीजी अटैची ले आए पर मुझसे कहा—'रामजी को प्रणाम तो कर लीजिए ।' मैंने पुजारीजी से समय न होने की बात कही और अनुरोध किया कि मेरी मजबूरी को देखते हुए वे रामजी को मेरी ओर से प्रणाम कर देंगे और मेरी ओर से क्षमा माँग लेंगे । रामजी मेरी मजबूरी समझते हैं ।

'और तेज चलो, और तेज चलो' की हाँक लगाते हुए रिक्शे वाले को इस कदर भगाता रहा कि स्टेशन लगभग नौ पैंतीस पर पहुँच गया। टिकट लिया। भागता हुआ ट्रेन तक पहुँचा और ट्रेन में चढ़ा ही था कि गाड़ी सीटी देकर चल पड़ी। मेरे मन में यह बात आयी कि अगर पुजारी की बात मानकर मंदिर के प्रांगण में स्थित मंदिर तक जाता और प्रणाम करके आता तो यह गाड़ी मुझे कभी न मिलती। रिक्शे से उतरकर आँगन तक जाने, प्रणाम करने और रिक्शे तक वापस आने में कम से कम पाँच मिनट तो लग ही जाते।

रात के लगभग पौने दो बजे गाड़ी बरेली स्टेशन पहुँची। घर के लिए एक रिक्शा किया और सामने पैर के पास अटैची को रखकर रिक्शे पर बैठा। मेरा आवास मुश्किल से 100 मीटर दूर रह गया था जब सड़क पर पड़ी एक ईंट पर रिक्शे का पिछला पहिया चढ़ गया। इसके कारण रिक्शा एक तरफ से ऊँचा हो गया और एक तरफ से ढलुआ। अटैची नीचे लुढ़क गयी। रिक्शे का पहिया जब ईंट के ऊपर से नीचे उतरा तो दूसरा पहिया चमड़े की इस अटैची को दबाता हुआ अटैची पर चढ़ गया और फिर जो असंतुलन की स्थिति हुई उसमें रिक्शा ही उलट गया और मैं भी रिक्शे के नीचे आ गया। मेरे दाहिने पैर पर घुटने और टखने के बीच रिक्शे के लोहे का वह भाग गिर पड़ा जो पैडिल के साथ जुड़ा रिक्शे की बॉडी को रिक्शे की साइकिल से जोड़ता है। मेरा दाहिना पैर जख्मी हो गया। हड्डी तो नहीं टूटी पर त्वचा को काटते हुए जख्म बन गया और खून रिसने लगा। किसी तरह मैं पैदल घर तक पहुँचा, अटैची हाथ में लिए। रिक्शावाला पीछे-पीछे चल रहा था। मेरी पत्नी मेरी वापसी का कार्यक्रम जानती थीं। प्रतीक्षा करती वे जगी हुई थीं। आवाज देने पर तुरन्त बाहर आ गयीं। वे इस अप्रत्याशित दुर्घटना के लिए तैयार नहीं थीं। रात के दो बज चुके थे। इस समय किसी डॉक्टर के पास जाया भी नहीं जा सकता था। घर पर ही उन्होंने गरम पानी में डेटाल डाल कर घाव को साफ किया और घर पर जो भी दवा उपलब्ध थी उसके सहारे मरहम-पट्टी कर दी।

सुबह जिला अस्पताल पहुँचा। चिकित्सा अधिकारी ने टिटनस की सुई लगाई और फिर घाव की मरहम-पट्टी की। रोज मरहम-पट्टी बदलवाने की सलाह दी। अतः रोज सबेरे के समय मैं अस्पताल जाकर घाव पर मरहम-पट्टी बदलवाने लगा। यह सिलसिला लगभग पन्द्रह दिन तक चला। खून का रिसना तो बन्द हो गया। पर इतने दिन की मरहम-पट्टी के बावजूद घाव पर त्वचा या खाल नहीं आ पा रही थी। फिर हर तीसरे दिन पट्टी बदलवाने लगा। पर स्थिति दूसरे पखवारे में भी वैसी ही बनी रही। तमाम चिकित्सा विशेषज्ञों ने परीक्षण किया और हर तरह के टेस्ट किए पर यह बात उनकी समझ में नहीं आ रही थी कि एक महीना बीत जाने पर भी अभी तक घाव के ऊपर त्वचा क्यों नहीं बन पाई ? 'स्किन फॉर्मेशन' क्यों नहीं हो पा रहा है ? फिर डॉक्टरों ने यह तय किया कि बजाय तीसरे दिन के, सप्ताह के सप्ताह

ड्रेसिंग हो। मरहम-पट्टी रविवार के रविवार होने लगी। पर घाव की स्थिति घटना से दो महीने बीत जाने पर भी उसी प्रकार बनी रही त्वचा-विहीन हरा जख्म जिससे खून रिस न रहा हो। इसी बीच होली आ गयी जब संवत् बदलता है।

बरेली में सनातन धर्म सभा से जुड़े उस जमाने में एक वकील ललित बिहारी थे। वे हर वर्ष पंचांग निकालते थे। उसी की एक प्रति भेंट करने के लिए वे मेरे पास एक शाम पहुँचे। मेरी आध्यात्मिक अभिरुचि की उन्हें जानकारी थी। उन्होंने एक आध्यात्मिक प्रसंग अपने आप ही छेड़ दिया। वे मुझसे कहने लगे—'एक सवाल मेरे मन को बहुत परेशान करता था। श्रीराम के अनन्य भक्त हनुमानजी थे। श्रीराम के अत्यन्त प्रिय भ्राता लक्ष्मणजी और भरतजी थे। लक्ष्मण को शक्ति-बाण का आघात लगा था। उनके प्राण संकट में थे। उनकी प्राण-रक्षा के लिए महावीरजी संजीवनी बूटी लेने सुमेरु पर्वत पर गये थे और संजीवनी बूटी को न पहचान सकने के कारण पूरा पर्वत ही उठाए हुए गगन मार्ग से चले आ रहे थे। इससे बड़ा श्रीराम का और प्रिय कार्य क्या होगा ? फिर भी इस कार्य को पूर्ण करने के सन्दर्भ में श्रीराम के ही प्रिय भाई भरत ने हनुमानजी को बाण से आहत किया और वे पर्वत समेत आसमान से धरती पर गिर पड़े। कितनी चोट आई होगी हनुमानजी को, इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसा क्यों हुआ ? हनुमानजी भरत के हाथों क्यों घायल हुए जब वे श्रीराम के काम से ही निकले थे ? काम रामजी का, प्राण-रक्षा राम के अत्यंत प्रिय भाई लक्ष्मण की, काम संपन्न करने वाले महावीरजी जो रघुवीर को अत्यन्त प्रिय और महावीर को घायल करने वाले राम के प्रिय भाई भरत। कुछ समझ में नहीं आता था ऐसा क्यों हुआ ?'

वे आगे कहने लगे—इस प्रश्न को मैंने अनेक संत-महात्माओं से पूछा। कोई इसका संतोषजनक उत्तर नहीं दे सका। अंत में वृंदावन में एक पगला बाबा के नाम से मशहूर संत थे। उनसे भी मैंने यह प्रश्न किया। उन्होंने ही समुचित समाधान किया। पगला बाबा ने कहा—'तुम सारी रामायण पढ़ डालो। कभी महावीरजी ने ऐसा नहीं किया कि प्रस्थान करने से पहले रामजी को प्रणाम कर प्रस्थान करने की आज्ञा न माँगी हो। केवल शक्ति-बाण का ही प्रसंग ऐसा है जहाँ लक्ष्मण की प्राण-रक्षा निमित्त शीघ्रातिशीघ्र उपचार के लिए श्रीराम को बिना प्रणाम किए, बिना आज्ञा माँगे महावीरजी ने प्रस्थान किया। इस मर्यादा के उल्लंघन का दंड महावीरजी को मिलना ही था और वह मिला। प्रभु श्रीराम करुणा के अथाह सागर हैं पर मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं।'

जब वे चले गये, मैंने पूजा के कमरे में रखी रामायण उठाई और लक्ष्मण को लगे शक्तिबाण प्रसंग को फिर से पढ़ा। पगला बाबा ने ठीक ही कहा था। 'रामकाज करिबे को आतुर' महावीरजी संजीवनी बूटी लाने जब चले, प्रभु श्रीराम को न प्रणाम किया न प्रणाम के साथ ही साथ औपचारिक आज्ञा प्रस्थान की माँगी। मुझे अपनी गलती का एकबारगी एहसास हुआ। पुजारीजी के कहने के बावजूद, ट्रेन न छूटने

पाए की हड़बड़ी में मैंने मंदिर में विराजमान श्रीरामजी को प्रणाम कर प्रस्थान की औपचारिक आज्ञा नहीं माँगी थी। पुजारी से कह दिया था—'मेरी ओर से प्रणाम कर दीजिएगा..... मेरी गाड़ी का समय हो गया।'

मैं सुबह का इंतजार करने लगा। सुबह होते ही दो दिन के आकस्मिक अवकाश का प्रार्थनापत्र देकर पहली ट्रेन से मैं बरेली से लखनऊ पहुँचा। मंदिर में जाकर प्रभु श्रीराम से बारम्बार क्षमा माँगी। फिर बलरामपुर अस्पताल गया। मुख्य चिकित्सक के कक्ष में मेरे पूर्व जिला जज श्री अहमद मिर्जा बैठे थे। उन्होंने अस्पताल आने का कारण पूछा। मैंने बतलाया किस तरह से तमाम इलाज के बावजूद पैर का घाव भर ही नहीं रहा है। श्री मिर्जा उस समय लखनऊ में अध्यक्ष, सतर्कता आयोग के पद पर कार्यरत थे। सभी विभाग के अधिकारी उनका आदर करते थे। श्री मिर्जा ने मुख्य चिकित्सक से कहा—'एक मामूली से घाव को भरने में इतना वक्त लगा करेगा तो हमारे अफसरान काम क्या कर पायेंगे ?' मुख्य चिकित्सक ने शल्य चिकित्सक को बुलाकर आवश्यक हिदायत दी। शल्य चिकित्सक मुझे ड्रेसिंग रूम में ले गया। घाव का परीक्षण कर आवश्यक मरहम-पट्टी की। बैंडेज कुछ जोर से ही बाँधा और मुझे हिदायत दी कि एक सप्ताह के बाद ही बैंडेज को खुलवाइएगा और फिर घाव की दशा के बारे में इत्तिला दीजिएगा, तब जो कार्यवाही ज़रूरी होगी, की जाएगी। मरहम-पट्टी करवाकर मैं फिर मंदिर पहुँचा। प्रभु श्रीराम से बारम्बार क्षमा-याचना करते हुए प्रस्थान करने की आज्ञा सादर प्रणाम करते हुए माँगी। फिर रात की ट्रेन पकड़ने के लिए स्टेशन के लिए चल पड़ा। बरेली जानेवाली काठगोदाम एक्सप्रेस प्लेटफॉर्म पर लग चुकी थी। इत्मीनान से चढ़ा। रात के लगभग दो बजे बरेली स्टेशन आया। मन में एक शांति थी—शायद इसलिए कि अब एक हफ्ते बाद ही पट्टी खुलेगी। रोज-रोज के झंझट से फुर्सत। शायद इसलिए कि प्रभु श्रीराम से क्षमा-याचना करके प्रस्थान की आज्ञा लेकर, बारम्बार प्रणाम करके चला था। ट्रेन से उतरकर दाहिना पाँव सम्भालकर प्लेटफॉर्म पर रखा ही था कि चोट पर की पट्टी खिसक कर नीचे टखने पर चली आई। अब क्या हो सकता था ? किसी तरह पैंट की मोहरी संभाले कि खुले घाव पर पैंट की रगड़ न लगे, मैं स्टेशन के बाहर आया। रिक्शा किया और घर पहुँचा। बहुत दु:खी होकर पत्नी से सब बात कही और तुरन्त गर्म पानी से सेंक करने को कहा—मरहम-पट्टी तो सुबह अस्पताल में होगी। मेरी पत्नी ने जब सेंक करने के लिए पैंट की मोहरी को संभालकर ऊपर उठाया तो तुरंत बोल उठी—'सेंक मत करवाइए.....घाव भर चुका है.....पर ऊपर की अभी-अभी आई खाल नई और नर्म है।' मैंने तब घाव को देखा। बात मेरी पत्नी ने बिलकुल सही कही थी। फिर सुबह अस्पताल जाकर मरहम-पट्टी करवाने का सवाल भी नहीं उठा। मैं मानता हूँ मर्यादापुरुषोत्तम प्रभु श्रीराम की यह कृपा थी।

*

जब भगवान् ने भक्त को खींचा

एक रथयात्रा के दिन (23 जून 2001), एक अनुत्तरित प्रश्न हम सबके मन में उठा। क्या रथ पर आरूढ़ भगवान् जगन्नाथ ने भक्त को खींचा था ? मेरे द्वितीय पुत्र बिहार में नेपाल के निकट स्थित उत्तरी सीमावर्ती जिला बेतिया में न्यायाधीश के रूप में सेवारत थे। ग्रीष्मकालीन अवकाश में वे अपने घर वाराणसी आये। उनके मना करने पर भी बेतिया जनपद के पुलिस अधीक्षक ने उनके साथ अंगरक्षक की व्यवस्था कर दी जो उन्हीं के साथ वाराणसी आया। अगले ही दिन (23 जून) रथयात्रा का दिन था। इस दिन हर वर्ष की भाँति अकेले जगन्नाथजी को लिए हुए, एक छोटा-सा रथ नगर के प्रमुख मार्गों से होता हुआ गुजरता है। सुभद्राजी के साथ बलभद्रजी और जगन्नाथजी का विशाल रथ तो रथयात्रा चौराहे पर सुशोभित रहता है। यहाँ मेला लगता है। मात्र जगन्नाथजी को लिए हुए उपरोक्त छोटा रथ रथयात्रा के केवल प्रथम दिन नगर की परिक्रमा करता है। भक्तजन इस रथ को पीछे से ढकेलते हुए उसे आगे बढ़ाते हैं। घरों में खड़े लोग रथ आने पर सड़क पर उतरते हैं और देवता की पूजा करते हैं। तत्पश्चात् रथ आगे बढ़ जाता है। रथयात्रा के दिन (23 जून) अंगरक्षक ने सबेरे-सबेरे गंगाजी और विश्वनाथजी के दर्शन की इच्छा प्रकट की जिनकी महिमा वह बिहार के उस सुदूर इलाके में अनेक बार सुन चुका था पर कभी बनारस आने का इत्तिफाक नहीं हुआ था।

सहर्ष अनुमति मिलने पर वह प्रसन्नचित्त गंगाजी और विश्वनाथजी के लिए घर से सबेरे सात बजे रवाना हो गया। पर शाम को जब लगभग पाँच बज गये और अंगरक्षक वापस नहीं आया तो घर में चिंता की लहर दौड़ गयी। तरह-तरह के ख्याल मन में आने लगे और उनमें सबसे प्रधान दुश्चिंता थी, बढ़ी हुई गंगाजी में नहाकर अंगरक्षक सकुशल निकल तो आया ? पर तत्काल क्या किया जा सकता था ? जगन्नाथजी का रथ थोड़ी देर में आने वाला था। अमूमन सायंकाल साढ़े पाँच और साढ़े छह के बीच रथ हम लोगों के मकान के सामने से गुजरता था जब हमलोग सड़क पर उतरकर पूजा-अर्चना करते थे।

बाजे-गाजे के साथ लगभग सवा छह बजे शाम को जगन्नाथजी का रथ घर के सामने की सड़क पर पहुँचने को हुआ। हम लोगों ने उतरकर जगन्नाथजी की पूजा-अर्चना की। रथ के पीछे कई उत्साही भक्त थोड़ी देर के लिए स्थिर खड़े हो गये थे जिससे रथ दो-तीन मिनट तक पूजा-अर्चना के लिए मकान के सामने रुक गया था। तभी रथ के पीछे चल रही भीड़ से (जो रथ को धक्का देकर आगे बढ़ा रही

थी) वह अंगरक्षक निकलकर घर के दरवाजे पर खड़ा हो गया । उसे देखकर सभी लोग चिंतामुक्त हुए, प्रसन्न हुए ।

अंगरक्षक ने बतलाया कि वह गंगाजी में स्नान करने के बाद विश्वनाथजी का दर्शन करने गया । फिर निकट के मंदिरों में भी पूजा-अर्चना की । तत्पश्चात् गलियों में घूमता-घामता जब वह सड़क पर पहुँचा तब रास्ता ही भूल गया । मोहल्ले का नाम भी उसके दिमाग से उतर गया था । इधर-उधर कई सड़कों पर उसने कई चक्कर लगाये पर कुछ समझ में नहीं आया कि घर तक कैसे पहुँचा जाये । इसी में अपराह्न के चार बज गये । तभी उसे जगन्नाथजी वाला रथ दिखलाई दिया जिसे पीछे से भक्तजन आगे ढकेल रहे थे । सबसे आगे बजता हुआ नगाड़ा रथ के आने की सूचना प्रसारित करते हुए लोगों को बगल में खड़े होने का संदेश दे रहा था, जिससे रथ के लिए मार्ग प्रशस्त हो । अंगरक्षक यह नहीं जानता कि रथ सड़क-सड़क होते हुए कहाँ तक जायेगा । पर अपनी परेशानी में इधर-उधर भटकने से अच्छा उसने जगन्नाथजी के रथ को खींचने में अपने योगदान को समझा । इस तरह चलते-चलते सवा दो घण्टे पश्चात् जब जगन्नाथजी का रथ हम लोगों के मकान के सामने सड़क पर रुका और रथ को पीछे से धक्का देने वाली भीड़ स्थिर हुई तब अंगरक्षक ने पाया कि वह अपने आप मकान तक पहुँच गया है और सड़क पर हमलोग पूजा-अर्चना कर रहे हैं । उसकी प्रसन्नता का अनुमान लगाया जा सकता है । जगन्नाथजी ने उसे ठीक अपने गंतव्य स्थान पर लाकर खड़ा कर दिया था ।

और फिर यह विवाद परिवार के सदस्यों में आह्लाद के बीच चला कि अंगरक्षक जगन्नाथजी को खींचकर घर तक लाया या भगवान् जगन्नाथजी अंगरक्षक को खींचकर घर के दरवाजे तक लाये ।

*

वे कौन थे ?

बात वर्ष 1977 की है । मेरी बड़ी बेटी विजय लक्ष्मी के विवाह की तिथि थी । बारात इलाहाबाद से बस से और कुछ मोटरकारों से गोपीगंज के रास्ते बनारस आ रही थी । मेरे समधी साहब ने कोई भी माँग नहीं की थी । बस, उनकी इतनी फरमाइश थी कि बारात का समुचित स्वागत-सत्कार हो । मैंने स्वयं उनसे अनुरोध किया कि गोपीगंज क्षेत्र में अमुक विद्यालय परिसर में बारात दोपहर में थोड़ा समय निकालकर जलपान कर ले और इसके पश्चात् जनवासे के लिए बनारस की ओर प्रस्थान करे । मेरे समधी साहब समय के बहुत पाबंद थे । यही तय पाया गया कि बारह बजे दोपहर को बारात इलाहाबाद से प्रस्थान करेगी और दोपहर के दो बजे गोपीगंज स्थित विद्यालय परिसर पहुँच जाएगी ।

जाड़े के दिन थे, अतः चाय का प्रबन्ध करने वाले घर के कुछ बच्चे विद्यालय परिसर में दिन के लगभग बारह बजे ही पहुँचकर स्वागत का सारा प्रबन्ध कर रहे थे जिससे बारात के आने पर ताजी चाय पिलाई जाए । मिठाई-नमकीन के लिए बनारस के एक प्रतिष्ठित मिष्ठान्न भण्डार से यह अनुरोध किया गया था कि बिल्कुल ताजी मिठाई और बढ़िया नमकीन उसी दिन ग्यारह बजे तक पैकेटों में उपलब्ध हो जाए । ऐसा ही हुआ । घर पर ग्यारह बजे सारे पैकेंट्स पहुँच गए । एक नयी एम्बेसडर गाड़ी लगभग बारह बजे दिन में घर के कुछ बच्चों को लेकर गोपीगंज के लिए चली । गाड़ी नयी थी, अतः यही आशा थी कि दिन के डेढ़ बजे तक यह गाड़ी मिठाई-नमकीन लिए हुए गोपीगंज के विद्यालय तक पहुँच जाएगी जिससे बारात को समय से चाय पिलाई जा सके ।

इसके बाद जो कुछ घटित हुआ वह मुझे उन बच्चों ने बतलाया जो मिठाई नमकीन लेकर कार से दोपहर के बारह बजे गोपीगंज के लिए रवाना हुए थे । राजातालाब और मिर्जामुराद के बीच में एक स्थल पर जहाँ सड़क के दोनों ओर घनी फसल खड़ी थी और आबादी का नामोनिशान नहीं था, उस नयी एम्बेसडर कार के इंजिन का 'फैन बेल्ट' एकबारगी टूट गया । 'फैन-बेल्ट' के टूटने से गाड़ी काफी धीमी गति से चलती हुई आगे बढ़ तो सकती थी पर अपनी धीमी गति के कारण ठीक समय पर न पहुँच कर गोपीगंज निर्धारित समय से लगभग ढाई-तीन घंटे लेट पहुँचती । कुल आधे घंटे का मारजिन रखकर गाड़ी बनारस से चली थी । डेढ़ बजे तक गोपीगंज पहुँचना था जिससे दो बजे बारात पार्टी का समुचित स्वागत-सत्कार किया जा सके । उस वीरान स्थल में किसी ऐसी दुकान का सवाल ही नहीं था जहाँ से इंजन का 'फैन बेल्ट' खरीदा जा सके । वापस बनारस अगर किसी साधन से पहुँचा

भी जाए तो बनारस पहुँचने, नया फैन बेल्ट खरीदने और फिर इस स्थल तक वापस आने और इंजन में 'फैन बेल्ट' लगाने में कम से कम डेढ़ घंटे का समय लग ही जाएगा और तब तक बारात पार्टी गोपीगंज से बनारस की ओर केवल सादी चाय पीकर काफी आगे बढ़ चुकी होगी । बच्चों की कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए । वहाँ कोई फोन भी नहीं था जिससे घर पर खबर दी जा सकती थी और कोई आदमी बनारस से फैन बेल्ट खरीदकर वहाँ तक पहुँचता ।

बच्चे इसी उलझन में पड़े थे । तभी बाईं तरफ के लहलहाते खेत के बीच से एक सौम्य पुरुष गाड़ी तक आए और बच्चों से पूछा—'क्या परेशानी है ?' ड्राइवर ने और बच्चों ने उनसे गाड़ी के इंजिन के 'फैन बेल्ट' के टूटने की बात कही और बारात पार्टी के बारे में भी बतलाया जो इलाहाबाद से गोपीगंज लगभग दो बजे पहुँचने वाली थी और जिसके स्वागत-सत्कार के लिए मिठाई-नमकीन के पैकेट्स गाड़ी में लदे हुए थे ।

उन सौम्य पुरुष ने बच्चों से कहा—'आप लोग दो मिनट रुकिए' । इसके बाद वे जिस रास्ते से आए थे उसी रास्ते से खेत की लहलहाती फसल के मध्य से अन्दर की ओर चले गये । उन्हें जाते देखा गया किन्तु वे कहाँ गये यह पता नहीं चला । कोई झोपड़ी भी मोटरकार से उस दिशा में नहीं दिखलाई पड़ती थी । लगभग तीन-चार मिनट बाद वे खेत से पुनः सड़क पर प्रकट हुए । उनके हाथ में सील-बंद नया 'फैन-बेल्ट' था । ड्राइवर ने तत्काल इस नये 'फैन बेल्ट' को गाड़ी में लगाया । बच्चों ने बहुत धन्यवाद दिया और बहुत आग्रह किया कि वे इस 'फैन बेल्ट' की कीमत ले लें । उन सौम्य पुरुष ने इनकार करते हुए कहा—'कभी आप भी किसी को परेशानी में देखें तो उसकी जो मदद कर सकें, कर दीजिए । इतना कहकर वे पुनः उसी लहलहाती फसल में प्रविष्ट हो गये और भीतर की ओर चले गए ।

इस पूरी कार्रवाई में लगभग बीस मिनट लग गये और जब दो बजने में लगभग दस मिनट शेष थे, गाड़ी गोपीगंज के विद्यालय परिसर में प्रवेश कर रही थी । लगभग दस मिनट बाद बारात पार्टी आ गयी । ताजी बढ़िया मिठाई-नमकीन तथा बढ़िया चाय से बारात पार्टी का स्वागत हुआ ।

जलपान कर बारात पार्टी ने बड़े अच्छे मूड में गोपीगंज से बनारस स्थित जनवासे के लिए प्रस्थान किया । अभी तक यह रहस्य नहीं सुलझ पाया—'आखिर वे सौम्य पुरुष कौन थे ?'

*

त्रिकोण के तीन कोण

सत्र न्यायाधीश की कुर्सी पर बैठकर अगर कभी हत्या के अपराधी को प्राणदण्ड की सजा सुनाई तो मन में यह विचार उठता था कि शायद मेरे ही हाथों इसे प्राणदण्ड की सजा मिलनी थी इसीलिए मेरी नियुक्ति इस जनपद में हुई। किसी भी सेशन के मामले में निर्णय की परिणति तक पहुँचने के लिए तीन अनिवार्य कोण होते हैं—न्यायाधीश, अभियोजन पक्ष और बचाव पक्ष। इनमें से कोई भी कोण अगर बिखर जाये तो निर्णय की वह परिणति नहीं होगी जो त्रिकोण के तीन कोणों के चलते होनी थी। मेरा ही नहीं, अनेक सत्र न्यायाधीशों से बातचीत के सन्दर्भ में मुझे उनका भी यही मत सुनने को मिला कि शायद हम लोग किसी सत्र विचारण (सेशन ट्रायल) के लिए पहले से ही चयनित हैं।

वर्ष 1973 में मैं सीतापुर में सत्र न्यायाधीश के रूप में कार्यरत था। जून के महीने में नीमकरौली बाबा के पास उनके कैंची आश्रम गया था। अपराह्न लगभग चार बजे बाबा के श्री चरणों में नमन करने मैं आश्रम में बाबा के कक्ष पहुँचा। वहाँ एक बलिष्ठ युवक बैठा था। उम्र से वह 27-28 वर्ष का युवक प्रतीत होता था। आश्रम में पूरी शांति थी। कोई और नहीं था। थोड़ी देर बाद बाबा ने मेरी ओर देखते हुए, उस युवक से पूछा—'मैने तुमसे क्या कहा था ?''

युवक कुछ सकपकाया और कुछ संकोच-भरी आँखों से मुझे देखते हुए बात टालने की कोशिश की—'आपने तो मेरे बारे में कई बातें बतलाई हैं। मुझे सब याद है।'

बाबा ने फिर प्रश्न दुहराया—'नहीं। वह जो खास बात बतलाई है उसे कहो।' युवक ने तब सर झुकाये हुए दबी जबान से कहा—'मुझे मृत्युदण्ड की सजा मिलेगी।'

तब बाबा ने स्पष्ट किया—'वह मृत्युदण्ड की सजा इन्हीं जज साहब के हाथों तुम्हें मिलेगी।'

बाबा के श्रीमुख से यह बात सुनकर उस युवक पर क्या गुजरी होगी इसका तो केवल मैं अंदाजा ही लगा सकता था। किन्तु मैं एक बारगी सन्नाटे में आ गया। जिसे मेरी कलम से मृत्युदण्ड मिलने वाला है वही युवक मेरी बगल में बैठा है और उसे मालूम है कि मृत्युदण्ड की सजा मेरे ही हाथों उसे मिलनी है।

इसके पहले कि मैं या वह युवक सामान्य हो पाते, बाबा ने युवक को आदेश दिया—'जज साहब को अपनी मोटर पर पहाड़ी की सैर करा लाओ।'

युवक तत्काल उठा। आश्रम से बाहर की सड़क पर खड़ी अपनी नई फिएट मोटर कार की तरफ बढ़ा। उठा तो मैं भी कुछ असमंजस की स्थिति में था। तभी बाबा ने मुझसे कहा—'जाओ, पहाड़ घूम आओ।'

बाबा के आदेश का अनुपालन न करने का सवाल ही नहीं उठता था। अत: मैं भी उस युवक के पीछे-पीछे उसकी गाड़ी तक गया। ढलते सूरज की सुनहली रोशनी में नई गाड़ी चमचमा रही थी।

युवक ने आगे का दरवाजा खोला और मैं गाड़ी में बैठ गया। युवक ने गाड़ी में बैठकर गाड़ी को एकबारगी तेज स्पीड में चला दिया। गाड़ी रानीखेत जाने वाली सड़क पर भागने लगी। युवक के इरादे के प्रति मेरा थोड़ा शंकित होना स्वाभाविक ही था, किन्तु बाबा ने आज्ञा दी थी इसलिए मैं आश्वस्त था। फिर भी मन में तरह-तरह की काली सायाएँ घुमड़ रही थीं। बातचीत में पता चला कि वह युवक विज्ञान में स्नातक है और तराई क्षेत्र में अपने फार्म की देखभाल करता है।

मौन तोड़ते हुए मैंने उससे पूछा—'क्या आप बाबा की बात पर विश्वास करते हैं ?' 'पूरा विश्वास करता हूँ।' युवक ने कहा।

"मैं भी बाबा की बात में पूरा विश्वास करता हूँ और मैं मानता हूँ कि जब बाबा ने बतला दिया है तो उसी प्रकार घटना का क्रम होगा। किसी क्रोध के क्षण में आप किसी की जान ले लेंगे। मुकदमा मेरे इजलास में चलेगा और मेरी ही कलम से आपको प्राणदण्ड मिलेगा। यह तो होना ही है।" मैंने कहा।

'मैं भी ऐसा ही विश्वास करता हूँ।' युवक ने कहा।

गाड़ी कुछ और आगे बढ़ी और एकबारगी उस युवक ने दाहिनी ओर चढ़ाई पर जाने वाली एक पतली सड़क पर गाड़ी मोड़ दी। गाड़ी फिर आगे बढ़ने लगी। बिल्कुल सन्नाटा था और दूर-दराज तक कोई आहट नहीं थी।

कुछ संयत होकर मैंने कहा—'आप तो पढ़े-लिखे हैं। आपने जाप्ता फौजदारी (कोड ऑफ क्रिमिनल प्रोसीजर) का नाम सुना होगा जो सत्र विचारण की प्रक्रिया निर्धारित करती है ?' मैंने पूछा। युवक ने हामी भरी।

मैंने कहा—'न्यायसेवा का कोई भी अधिकारी जानबूझकर किसी अधिनियम के किसी प्राविधान का उल्लंघन नहीं करेगा। न्याय सेवा में विधि की सीमा में कार्य करने का प्रतिबन्ध प्रत्येक न्याय सेवा के अधिकारी पर लागू है और वह इस प्रतिबन्ध की अवहेलना किसी भी स्थिति में नहीं कर सकता।'

युवक चुपचाप मेरी बात सुन रहा था। मैंने फिर अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा—'यहीं जाप्ता फौजदारी धारा 479 में यह स्पष्ट कहती है कि किसी भी ऐसे मामले का विचारण कोई सत्र न्यायाधीश नहीं करेगा जिसकी उसे व्यक्तिगत जानकारी है या जिसमें उसकी व्यक्तिगत रुचि है। आपके मामले में गवाही कुछ भी आए, मुझे पहले से ही जानकारी है कि मेरी कलम से आपको प्राणदण्ड मिलना ही

मिलना है । ऐसी सूरत में आपके मुकदमे पर विचारण विधिक निर्देश का स्पष्ट उल्लंघन होगा । गवाही कुछ भी आये—यह बात मैं कैसे भूल सकूँगा कि मेरी कलम से आपको केवल मृत्युदण्ड मिलना है—उससे कम कुछ भी नहीं । अत: मैं आपके मुकदमे का विचारण नहीं कर पाऊँगा । इससे बढ़कर व्यक्तिगत रुचि की और क्या बात होगी कि विचारण के पूर्व ही न्यायाधीश को अभियुक्त के प्राणदण्ड की सजा का पूर्व ज्ञान है ।' वह युवक ध्यान से मेरी बात सुन रहा था और मैंने उसके चेहरे के तनाव को कम होते देखा ।

मैंने बात आगे बढ़ाई और उससे कहा, 'अभी मेरी सेवा के अनेक वर्ष शेष हैं । पता नहीं कितने वर्षों बाद आपके मामले का विचारण मेरे सामने आयेगा । मैं तब तक आपकी शक्ल-सूरत भूल सकता हूँ पर आप मेरी सूरत नहीं भूल सकते । मृत्युदण्ड जिसके हाथों मिलना है उसकी सूरत अभियुक्त नहीं भूलेगा । इसलिए आपका मुकदमा जब भी मेरे सामने आये, आप भरी अदालत में मुझसे कहें—'आप कानूनन यह मुकदमा नहीं कर सकते ।' मैं आप पर अवमानना की कार्रवाई नहीं करूँगा और मुकदमे को किसी अन्य न्यायालय में स्थानान्तरित कर दूँगा ।' उस पढ़े लिखे युवक पर मेरी बात का पूरा असर हुआ और उसने कहा—'चलिए कुछ ही दूरी पर सरकार का 'एग्रो' उद्योग है, वहाँ सेब का ताजा-ताजा रस मिलेगा ।'

कुछ दूरी की ड्राइव के बाद 'एग्रो' उद्योग का वह काउण्टर भी आया जहाँ ताजा सेब का रस मिलता था । सेब के रस का पान कर हमलोग फिर कैंची वापस आ गये । रात में मैं निश्चिंत होकर सोया ।

इस घटना के लगभग 10-12 वर्षों बाद मैं किसी काम से सचिवालय, लखनऊ गया था । वहाँ से जब शाम को निकल रहा था तभी एक अजनबी ने पीछे से मेरे कंधे को थपथपाकर पूछा—'मुझे पहचाना आपने ?' वह देखने में एक अधेड़ उम्र वाला व्यक्ति लगता था । दाढ़ी बढ़ी हुई थी । मैं उसे बिल्कुल ही नहीं पहचान पाया और तब उसने कहा—'हमलोगों ने कार में पहाड़ की सैर की थी ।'

वर्षों पहले की सारी घटना एकबारगी मानस में कौंध गई । मैंने उससे प्रश्न किया—'क्या आप पर इस बीच कोई आपराधिक मामला चला ?'

उसने मुस्कुराते हुए कहा—'मेरी सावधानी ने मुझसे कोई अपराध होने ही नहीं दिया, तो फिर आपराधिक मामला कैसे चलता ?'

उसका उत्तर सुनकर मुझे परम संतोष हुआ । मुझे ऐसा लगता है जब मैंने यह निश्चय कर लिया कि निर्णय की पूर्व जानकारी होने के कारण मुझे इसके मामले को नहीं सुनना है, तभी त्रिकोण का एक महत्वपूर्ण कोण बिखर गया और पूर्व नियोजित परिणति अपने आप टूट गई । फिर न अपराधी ने अपराध किया और न न्यायाधीश द्वारा अपराध को निर्णीत करने का प्रश्न ही उठा । एक तिलस्म था जिसे बाबा ने तोड़ दिया था ।

*

ऊपरवाले के हाथ

वर्ष 1986 में मैं गोरखपुर में जिला जज के पद पर कार्यरत था । तभी मुझे माननीय उच्च न्यायालय ने नैनीताल जाकर अतिरिक्त जिला जजों के एक बैच को कुछ कानूनी विषयों पर वार्ता देने के लिए आदिष्ट किया जो संभवत: एक सप्ताह का कार्यक्रम था । इस समय न्याय सेवा के अधिकारियों का प्रशिक्षण लखनऊ में न्याय सेवा शिक्षण संस्थान में होता है । वर्ष 1986 में यह प्रशिक्षण नैनीताल में होता था । उसके भी कई वर्ष पूर्व प्रशिक्षण इलाहाबाद में होता था ।

मुझ पर सहज दया रखने वाले नीम करौली बाबा लगभग 13 वर्षों पूर्व शरीर छोड़ चुके थे । उनके कैंची के आश्रम में उनका भव्य मंदिर था । इसी आश्रम में नीम करौली बाबा वर्ष के अधिकांश भाग में रहते थे । नैनीताल से नीचे उतरते समय जो सड़क रानीखेत को चली गयी है; उस पर भुवाली सेनिटोरियम से लगभग चार किलोमीटर और आगे कैंची पड़ता है जो बाबा के आश्रम के संदर्भ में विख्यात है । नैनीताल की अपनी ऊँचाई है और कैंची के लिए अगर कोई गाड़ी नैनीताल से चले तो उसे ढलान पर ही उतरना पड़ेगा । इसी तरह से कैंची से नैनीताल पहुँचने के लिए अधिकांश भाग चढ़ाई ही चढ़ाई है ।

वार्ता के अन्तिम दिन अपराह्न तक मेरी वार्ताओं का सिलसिला पूर्ण हो चुका था । मेरी इच्छा जानकर शिक्षण संस्थान ने संस्थान की जीप से मुझे कैंची जाने और फिर कैंची से नैनीताल की वापसी की व्यवस्था कर दी थी । दोपहर के लगभग ३ बजे संस्थान से जीप पर मैं कैची को चला । जीप पर आगे मैं बैठा था और चालक, जो गाड़ी चला रहा था । जीप के पिछले भाग में चालक का कोई सहायक भी बैठा था जो संस्थान का कर्मचारी था । हम कैंची लगभग एक-डेढ़ घंटे में पहुँच गये । बाबा की मूर्ति पर मत्था टेका, पूजा-अर्चना की । आश्रम की व्यवस्था से जुड़े लोगों से बातचीत भी हुई । आश्रम का प्रसाद मिला और फिर सायंकाल लगभग पाँच बजे जीप से नैनीताल के लिए प्रस्थान किया । बाबा के दर्शन से मन एक अपूर्व शांति से भर गया था । नैनीताल जाने के लिए, पाँच-छ: किलोमीटर जीप चली होगी कि सड़क का वह स्थान आ गया जहाँ सड़क थोड़े स्थल तक खड़ी चढ़ाई वाली सड़क हो गयी थी । जीप की दाहिनी ओर पहाड़ी थी और बायीं ओर था गहरा खड्ड, जैसा कि हर पहाड़ की सड़क पर देखा जा सकता है—सड़क की एक ओर पहाड़ का भाग और दूसरी ओर गहरा खड्ड । सड़क की बायीं ओर जिधर खड्ड पड़ता था उसमें थोड़े-थोड़े फासले पर मील के पत्थर जैसे पत्थर गड़े हुए थे ।

इसी स्थान पर जब जीप ऊपर को चढ़ रही थी, उसका ब्रेक टूट गया—शायद इसलिए कि जीप पुरानी हो चुकी थी। ड्राइवर हैंड ब्रेक लगाता रहा पर हैंड ब्रेक फ़ेल हो गया था। गाड़ी नीचे की ओर स्वत: ढलकने लगी। ड्राइवर ने स्टीयरिंग से बहुत कोशिश की कि कम से कम जीप दाहिनी ओर पहाड़ की तरफ ढलके, पर स्टीयरिंग भी फ़ेल हो चुकी थी। गाड़ी धीरे-धीरे नीचे उस ओर अपने आप चली जा रही थी जो सड़क की बाईं छोर थी और जिसके बाद था—काफी गहरा खड्ड।

चालक का सहायक, जो पीछे बैठा था, स्थिति भाँपकर तत्काल कूद पड़ा और ईंट-पत्थर की तलाश में लगा जिसे पिछले टायर के आगे लगाकर जीप की ढलान रोक सके। पर उस क्षेत्र में इस प्रकार का कोई पत्थर या ईंटा भी सड़क पर नहीं मिला। चालक जीप से तो नहीं कूदा पर मुझे ऐसा लगा कि जैसे वह जीप की ड्राइवर वाली सीट के दरवाजे के किनारे कुछ और खिसक गया और उस स्थिति के लिए तैयार था कि अगर जीप खड्ड में गिरने को ही हो तो वह तत्काल जीप से कूद पड़े। मेरी सीट के दरवाजे की तरफ से यदि कोई कूदता तो अधिक संभावना इसी बात की थी कि उसके पाँव सड़क पर नहीं पड़ते। बाईं ओर कूदने के लिए, पर्याप्त चौड़ाई नहीं बची थी। जीप धीरे-धीरे सड़क की बायीं छोर की और खड्ड में गिरने के लिए ढलकती जा रही थी।

बाबा की मूर्ति की पूजा-अर्चना के पश्चात् मन में ऐसी शांति थी कि उस क्षण भी मुझे कोई घबड़ाहट नहीं हुई। मन में एक विश्वास था कि बाबा के मंगलमय दर्शन के पश्चात् अमंगल की गुंजाइश ही नहीं। और फिर जीप का पिछला बाँया पहिया सड़क की बायीं ओर छोर तक पहुँच ही तो गया। वहाँ पहुँची जीप को जैसे किसी ने अपने हाथों से गिरने से रोक लिया। चालक उसी क्षण तत्काल सड़क की दाहिनी ओर वाले गेट से कूद गया और बाहर से मुझे ड्राइवर सीट के दरवाजे तक तत्काल आने को कहा जिससे मैं भी अविलंब बाहर आ जाऊँ। मैंने उसकी बात मानी पर बिना किसी घबड़ाहट या हड़बड़ी के। ड्राइवर की सीट की दाहिनी ओर जीप का दरवाजा या गेट था। उससे बाहर सड़क पर उतर आया। तब तक सड़क पर कुछ भीड़ भी इकट्ठी हो गयी थी।

बाहर आकर हम लोगों ने देखा, जीप की बाईं ओर का पिछला पहिया खड्ड में गिरने के ठीक पूर्व, सड़क की बायीं छोर पर गड़े एक मील के पत्थर जैसे अवरोध से अवरुद्ध हो गया था जिससे जीप वहीं खड़ी हो गयी और नीचे गिरने से बच गयी। हाथ देकर नैनीताल को जाती हुई एक बस को चालक ने रोका। बस के ड्राइवर से मेरा परिचय बतलाते हुए और घटना का विवरण देते हुए, अनुरोध किया कि मुझे शिक्षण संस्थान, नैनीताल तक बस से छोड़ दे, जिसके लिए बस ड्राइवर ने सहर्ष स्वीकृति दी। और मैं उसी शांत भाव से बाबा के आशीर्वाद में भीगा लगभग घंटे भर में संस्थान पहुँच गया।

घटना की जानकारी मिलने पर संस्थान की एक भारी गाड़ी घटनास्थल तक गई और फिर जीप को आगे से रस्सों से बाँध ऊपर की ओर खींच कर नैनीताल ले गयी ।

मैं मानता हूँ, खड्ड की ओर गिरती हुई जीप का गिरने के ठीक पूर्व मील के पत्थर के अवरोध पर रुक जाना, महज एक इत्तिफाक नहीं था ।

*

चिकित्सक का रागात्मक मोह

कभी-कभी कुछ ऐसे रहस्यमय नियम अनुभूत होते हैं जिनका कोई तार्किक समाधान नहीं है किन्तु ये अलिखित प्रकृति के नियम अपना खेल खेलते रहते हैं । आदमी केवल विस्मय से इनका खेल देख सकता है । किसी भी रहस्यमय प्राकृतिक नियम से उलझना ऐसा पाठ पढ़ा जाता है कि उलझने वाला दुबारा ऐसी गलती नहीं करता ।

ऐसा ही एक प्रसंग लगभग छियालीस वर्षों पूर्व मेरे सामने अवतरित हुआ । तरुणाई के उत्साह के साथ ही, प्रकृति के रहस्यमय नियम से अनभिज्ञ होने के कारण मैं प्रकृति के एक रहस्यमय नियम से उलझा और फिर वह सबक सीखने को मिला कि दुबारा वैसी भूल नहीं की । जनपद और संबन्धित व्यक्ति का नाम देना मैं उचित नहीं समझता क्योंकि घटना कें प्रमुख पात्र अभी जीवित हो सकते हैं ।

उन दिनों मुझे 'बायोकेमिक' औषधि ने आकृष्ट किया था जिसमें केवल बारह लवण या 'साल्ट' होते हैं । इन्हीं से सभी मर्जों का इलाज हो सकता है । यह दावा इस बायोकेमिक प्रणाली के प्रणेता 'शुसलर' का था । कई लोगों ने इसके सफल प्रयोग भी किये । मेरे बच्चे छोटे थे और उन्हें साधारण बीमारी में मैं इन्हीं बारह 'साल्ट' में से अपनी समझ के अनुसार दो-तीन 'साल्ट' उचित मात्रा में दे दिया करता था । औषधि कारगर होती थी । धीरे-धीरे यह बात मेरे सहयोगियों के परिवार में भी फैली । वे अपने अस्वस्थ बच्चों को लेकर मेरे पास आते । उन बच्चों की वही साधारण बीमारियाँ होतीं जो बच्चों में ठंड के कारण, लू लगने के कारण या पेट की गड़बड़ी के कारण पायी जाती हैं । अपनी सीमित समझ के अनुसार इन बारह लवण (साल्ट) में से मैं उचित 'साल्ट' का चयन कर बीमार बच्चे को देता था और फिर अधिकतर मुझे एक दो-रोज बाद बच्चे के माता-पिता का धन्यवाद मिलता । उसी जमाने में एक बार मैं बीमार पड़ा । बीमारी तो गम्भीर नहीं थी । इन्फ्लूएंजा या 'फ्लू' थी पर बुखार बहुत तेज था । सिविल सर्जन देखने आये । उन्होंने तेज हरारत के कारण इन्जेक्शन लगवाने को कहा । अस्पताल वापस जाकर उन्होंने तत्काल कम्पाउण्डर के हाथ सुई भेज दी और मैं इतना भी समय नहीं पा सका कि अपने मित्रों से परामर्श कर सकूँ कि क्या इंजेक्शन लगवाना आवश्यक है । 'फ्लू' का बुखार तो तीन-चार दिन में सामान्य हो जाता है ।

कम्पाउण्डर के आने पर, इस लिहाज में कि सिविल सर्जन साहब ने इतना ख्याल किया है, मैं इंजेक्शन लगवाने के लिए तैयार हो गया । कम्पाउण्डर ने बजाय हाथ में सुई लगाने के कमर में इंजेक्शन लगा दिया । सुई लगते समय पीड़ा तो हुई

पर इसे एक सामान्य बात समझकर मैंने कोई ध्यान नहीं दिया। अगले रोज बुखार उतर गया पर इंजेक्शन लगने के कारण जो दर्द उठा वह जाने का नाम ही न ले। और फिर एक सप्ताह पश्चात् दाहिने पैर से मैं लँगड़ाकर चलने लगा। छड़ी का सहारा भी लिया। यह स्थिति सप्ताह बाद भी जब बनी रही तब लखनऊ के मेडिकल कॉलेज में मैंने चिकित्सा के प्रोफेसर से परामर्श किया। उन्होंने 'स्टेरायड' की गोलियाँ खाने को दे दीं जो उस समय बहुत प्रभावशाली मानी जाती थीं। उसका 'कोर्स' करने के बाद भी मुझे कोई लाभ नहीं हुआ। तब मैं बायोकेमिक प्रणाली के एक मशहूर चिकित्सक के पास पहुँचा जो इलाहाबाद में वकालत के साथ ही निःशुल्क बायोकेमिक चिकित्सा भी करते थे। बायोकेमिक चिकित्सा पर उन्होंने पुस्तक भी लिखी थी, जिसका प्रयोग मैं सन्दर्भ पुस्तक के रूप में कभी-कभी करता था।

मेरा परिचय जानकर और मेरा कष्ट सुनकर उन्होंने अपनी दवा का बक्सा खोला जिसमें बायोकेमिक दवाओं के अलावा होमियोपैथी की भी अनेक शीशियाँ थीं। मैंने देखा कि उन्होंने जल्दी-जल्दी तीन-चार शीशियाँ निकालीं। हरेक में से थोड़ी-थोड़ी मात्रा में औषधि एक कागज के टुकड़े पर डाली और उसकी एक पुड़िया बनाई जो दवा की एक सामान्य खुराक थी। उस पुड़िया को अपने माथे से लगाकर दवा के बक्से के ऊपरी ढक्कन के भीतरी भाग में लगे अपने गुरु महाराज के चित्र से स्पर्श कराया और फिर प्रार्थना के कुछ अस्फुट शब्द उनके अधरों से निकले। मुझे वह पुड़िया दे दी और कहा, रात को खाने के घण्टे भर बाद इसे गरम पानी से लेना और फिर कभी इलाहाबाद आना तो मुझे हाल बताना।

मैंने बताये हुए निर्देश का पालन किया। सुबह जब उठा तो दर्द भी गायब था और पैर का लँगड़ापन भी। यह एक चमत्कार था। मैंने यह देखा था कि जिन शीशियों का चयन उन्होंने किया था उन्हें बिना लेबिल पढ़े ही दवा के बक्से से निकाल लिया था। यह भी हो सकता है कि उन्हें अभ्यास के कारण शीशियों की पहचान हो, जैसे हारमोनियम बजाने वाला बिना नीचे देखे भी द्रुत गति से हारमोनियम पर सरगम निकाल लेता है। पर यह बात तो अपनी जगह पर थी ही। एक ही खुराक में, लगभग बारह घण्टे के अन्दर मेरा दर्द और पैर का लँगड़ापन बिल्कुल ही दूर हो गया। मेरी समझ में यह बात आ गई कि दवा तो निमित्त थी। कष्ट जो दूर हुआ वह चिकित्सक की प्रार्थना से जो उन्होंने अपने गुरु महाराज से दवा स्पर्श कराते वक्त की थी।

उस समय शिष्टाचार के इस नियम का पालन किया जाता था, विशेषकर छोटे जनपदों में जहाँ अधिकारियों की संख्या कुछ मिलाकर भी सीमित थी कि पोस्टिंग पर आया कोई अधिकारी चाहे जिस विभाग का हो, जनपद में कार्यरत सभी अधिकारियों के घर बारी-बारी से प्रणाम करने जाता था। यह शिष्टाचार अधिकारी सपत्नीक निभाता था और फिर पारिवारिक स्तर पर आना-जाना शुरू हो जाता था।

ऐसी ही एक शाम मेरे निवास पर एक युवा दम्पति आया । पति महोदय लगभग दो सप्ताह पूर्व जनपद में महत्वपूर्ण पद पर नियुक्त हुए थे । वे पुलिस विभाग में कार्यरत थे । उनकी पत्नी भी साथ में थीं । बातचीत में पता चला कि उनकी पत्नी की बड़ी बहन मेरी पत्नी के साथ विश्वविद्यालय में सहपाठिनी थी । कुछ बातचीत के बाद हमलोगों को ज्ञात हुआ कि उनकी पत्नी को घोर कष्ट है । उनकी रीढ़ की हड्डी में कोई ऐसा रोग लग गया है जिसके कारण न तो वे झुक पाती हैं और न सामान्य रूप से कोई भी ऐसा कार्य पर पाती हैं जिसमें पीठ को झुकाना पड़े । यहाँ तक कि सोफे पर भी वह सीधी बैठती थीं और चलते समय भी बिल्कुल पीठ सीधी किये हुए चलती थीं । पूरी पीठ में दर्द रहता था, खास कर रीढ़ की हड्डी में । अनेक चिकित्सा संस्थानों में उनका इलाज अधिकारी महोदय ने कराया पर कोई लाभ नहीं हुआ ।

मैंने उनसे कहा, आप एक पुड़िया मेरी भी लेकर देखें । मुमकिन है इससे लाभ हो जाये और यदि लाभ नहीं भी होता है तो यह 'बायोकेमिक साल्ट' है, इससे कोई नुकसान नहीं होगा और न कोई इसकी प्रतिकूल प्रतिक्रिया होगी । मेरी बात पर वे लोग सहर्ष राजी हो गये ।

मैं पूजा के कमरे में गया और वही बायकेमिक साल्ट के डब्बे से कुछ शीशियों से दो-चार गोलियाँ निकाल एक कागज के टुकड़े पर डालकर पुड़िया बना ली । उस पुड़िया को देवीजी के श्रीचरणों में अर्पित करते हुए मैंने महिला को निरोग करने की प्रार्थना की । फिर आकर वह पुड़िया दम्पति को देते हुए मैंने भी वही कहा—'इसे रात में गरम पानी से ले लीजियेगा । कल बतलाइयेगा कि कुछ लाभ हुआ या नहीं ।

अगली रात शाम को चेहरे पर मुस्कुराहट लिये हुए वह दम्पति मेरे निवास पर आया और हृदय से मेरे प्रति आभार प्रकट किया । मुझसे और दवा माँगी । मैंने उन्हें सूचित किया कि जब कष्ट हो तब दवा लेने आइयेगा, अनावश्यक रूप से दवा नहीं लेनी चाहिए । वे फिर मेरे पास नहीं आये । मैंने मान लिया कि जैसे मैं अच्छा हो गया वैसे ही वह महिला भी रोगमुक्त हो गई ।

इस घटना के लगभग तीन दिन बात मैं जब सोकर उठा तो मेरी पीठ में भारी पीड़ा थी और लगभग वैसा ही कष्ट था जैसा की उस महिला ने शिष्टाचार वाली शाम को मुझे बतलाया था । मैं भी पीठ को झुका नहीं पाता था और सोफे पर टेक लगाने से ज्यादा आरामदेह था सोफे पर पीठ सीधी करके बैठना । जब दो रोज दर्द वैसे ही बना रहा मैं पुन: इलाहाबाद गया और उन्हीं चिकित्सक महोदय से मिला जो वकालत के साथ शौकिया बायोकेमिक चिकित्सा करते थे । वे देखने से ही संत प्रकृति के लगते थे । उनसे मैंने सारी दास्तान सुनाई । उन्होंने सुनकर कहा—'चिकित्सा के सन्दर्भ में चिकित्सक अपनी पूर्ण योग्यता, पूर्ण निष्ठा से चिकित्सा करे और परिणाम ईश्वर के अधीन छोड़ दे । किन्तु यह गलती नहीं करनी चाहिए कि अपने पूर्ण मनोबल से यह कामना करे कि मेरी चिकित्सा अवश्य कारगर हो और मरीज का कष्ट दूर

हो जाये। यह तो केवल वही चिकित्सक कर सकता है जिस पर उसके संत सत्‌गुरु की कृपा हो जो साक्षात् नर-रूप हरि होते हैं। अन्यथा यदि चिकित्सक के मनोयोग से रोग एक शरीर से हटता है तो रोग हटाने वाले चिकित्सक को रोग के स्वागत के लिए तैयार रहना चाहिए।'

उनकी बात मेरी समझ में आ गई। मैंने उन्हें वचन दिया कि दुबारा ऐसी गलती नहीं करूँगा जब तक संत सत्‌गुरु की प्रत्यक्ष कृपा मुझ पर नहीं होगी। उनसे निवेदन किया कि प्रकृति के इस रहस्यमय नियम की अनभिज्ञता के कारण मुझसे जो गलती हो गई है उसे आप ठीक करने का अनुग्रह करें।

और फिर मेरे उन संत चिकित्सक ने वही प्रक्रिया दुहराई जो वे पहले कर चुके थे। फिर मुझे दवा की पुड़िया मिली जिसे रात में मैंने गरम पानी से लिया और सुबह मैं भला-चंगा हो गया। ऐसे होते हैं प्रकृति के रहस्यमय नियम।

*

पंतजी का अंतिम सप्ताह

अमर कवि पं०सुमित्रानन्दन पंत के सम्पर्क में वर्ष 1946 में ही आ गया था, जब मैं बनारस से प्रयाग विश्वविद्यालय में बी०ए० की कक्षा में दाखिला लेने गया था। हम साहित्य के विद्यार्थियों के लिए पंतजी आराध्य थे, ठीक उसी तरह जैसे 'प्रसाद', 'निराला' और महादेवी। उन दिनों पंतजी 'बच्चनजी के निवास-स्थान पर ठहरे हुए थे, जो विश्वविद्यालय के निकट था और उस समूचे आवास परिसर को 'एडल्फी' के नाम से जाना जाता था। न्यायिक सेवा के दौरान भी मैं इलाहाबाद में 1960 से 1963 तक मुंसिफ़ के रूप में कार्यरत था। तब पंतजी को सरकारी आवास मिला था और वे आकाशवाणी इलाहाबाद के अधिकारी थे। इलाहाबाद आकाशवाणी में 'वातायन' कार्यक्रम पंतजी की ही देन थी। उस समय पंत जी का निवास दीवानी कचहरी के पीछे था। और कचहरी से लौटते वक्त अक्सर ही थोड़ा समय पंतजी के सान्निध्य में गुजरता था।

पंतजी की एक विशेष व्यक्तिगत बात यह थी कि यदि कोई दरवाजे पर भीख माँगने के लिए आ गया और उन्हें ऐसा लगा कि यह साधु पुरुष है तो वे उसे एक रुपया भेंट करते थे जो उस जमाने के एक रुपये के मूल्य को देखते हुए आज के पन्द्रह-बीस रुपये के बराबर होगा और यदि किसी के प्रति ऐसी भावना मन में नहीं उठी तो फिर याचक को खाली हाथ लौटना पड़ता था।

पंतजी के निधन के एक सप्ताह पूर्व एक तेजस्वी याचक उनके दरवाजे पर खड़ा हुआ। पंतजी ने उसे देखते ही साधु प्रकृति का व्यक्ति समझ, उसे हाथ जोड़कर एक रुपया दिया। उस व्यक्ति ने पंतजी की ओर एक नजर डाली और बोला— 'आशीर्वाद के रूप में मैं आपको इतना ही कह सकता हूँ कि आज के सातवें दिन आपका निधन होगा। इस सप्ताह में आप जो भी अधूरे काम हों उन्हें पूरा कर लीजिए।' यह आशीर्वाद देकर वह साधु चला गया।

पंतजी पूर्णतया स्वस्थ थे, सरकारी सेवा में थे। इस अप्रत्याशित भविष्यवाणी ने उन्हें विचलित कर दिया। मित्रों के बीच इसकी चर्चा की। मित्रों ने इसे साधुओं का हथकंडा बतलाया जिससे वे एक-दो दिन में पुनः आकर ग्रह-शांति के लिए पूजा-पाठ करने के नाम पर और पैसा ऐंठ लें। किंतु पंतजी ने साधु की भविष्यवाणी को गंभीरता से लिया था। अतः उनकी मित्र-मंडली ने यह तय किया कि पंतजी को कभी अकेला नहीं छोड़ा जायेगा जब तक कि भविष्यवाणी का सातवाँ दिन गुजर न जाए।

इस बीच पंतजी जो अविवाहित थे, उन्होंने अपनी सम्पत्ति के सम्बन्ध में आवश्यक कार्रवाई सम्पन्न कर ली। मित्रों का अनवरत साथ बारी-बारी से सातो दिन

के लिए बँध गया और फिर अंत में घोषित सातवाँ दिन भी आ गया। तब तक ऐसा कुछ भी नहीं हुआ था जो पंतजी के निधन का कारण बनता। मित्रों का पहरा सावधानी से भरा था, और पंतजी पर यह प्रतिबन्ध लग गया था कि वे अगर 'बाथरूम' भी जायें तो अन्दर से चिटखनी न लगायें।

उस भाग्यपूर्ण अंतिम दिन की रात में दस-ग्यारह के बीच मित्र-मंडली जश्न मना रही थी कि वह आखिरी दिन भी कट गया जिसे पंतजी ने अपने सीधे-सादे मिजाज के कारण अंतिम दिन भविष्यवाणी के आलोक में मान रखा था। अब चिन्ता या पहरे की कोई आवश्यकता नहीं थी। चुटकियाँ भी ली गयीं कि अगर साधु यह भविष्यवाणी करके नहीं जाता तो आप अपनी वृद्धावस्था में संपत्ति का प्रबन्धन किस प्रकार करते।

तभी पंतजी को 'बाथरूम' जाने की आवश्यकता हुई। पंतजी भी भूल गये कि अल्प अवधि ही सही किन्तु सातवाँ दिन अभी पूरी तरह नहीं बीता है। 'बाथरूम' में जाते ही पहले की आदत के अनुसार पंतजी ने अंदर से चिटखनी लगा दी। मित्र वर्ग ने भी इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

तभी बाथरूम से पंत जी की एक चीख उठी। मित्र वर्ग यह चीख सुनकर घबरा गया और बाथरूम की ओर लपका। भीतर से दरवाजा बंद होने के कारण मित्रों को धक्के देकर दरवाजे को तोड़ना पड़ा।

अंदर पंतजी का मृत शरीर पड़ा था। कोई भी ऐसी बात नहीं दिखलाई पड़ी जिसे मृत्यु का कारण कहा जा सके।

और इस प्रकार पंतजी के अंतिम सप्ताह का समापन हो गया।

*

मृत्योपरान्त वायावी शरीर

मेरे परम श्रद्धेय अग्रज और मेरे जिला जज रह चुके न्यायाधीश श्री बी०डी० माथुर का स्नेहमय साया मेरे ऊपर न्याय सेवा के आरम्भिक वर्ष से ही था । वे प्रतापगढ़ में प्रभारी सिविल एण्ड सेशन्स जज थे । मेरी प्रथम नियुक्ति बतौर मुन्सिफ प्रतापगढ़ में वर्ष 1957 में हुई । वर्ष 1957 में प्रतापगढ़ में बिजली तक नहीं थी और न्यायालय में गर्मी के दिनों में पंखा-कुली पंखा खींचता था । मुझे रहने को जो आवास मिला था उसमें पानी का स्रोत एक पुराना कुँआ था । कुछ दिनों बाद मैं बीमार पड़ गया और उस अस्वस्थता के दौरान श्री माथुर नियम से हर शाम सिविल सर्जन श्री टण्डन को लिये मेरे निवास पर सपरिवार आते थे । श्री टण्डन जो बाद में प्रदेश चिकित्सीय सेवा के सर्वोच्च पद तक पहुँचे, मेरा स्वास्थ्य परीक्षण करते और आवश्यकतानुसार औषधि और परामर्श देते । स्वस्थ होने पर भी कमजोर हो गया था । जब मैंने कोर्ट जाना फिर शुरू किया, श्री माथुर ने सभी वरिष्ठ अधिवक्ताओं को बुलाकर हिदायत दे दी कि मेरे न्यायालय में इसका ध्यान रखा जाये कि मेरे ऊपर अनावश्यक श्रम न पड़े और मैं तनावमुक्त रहूँ । कुछ ही दिनों में मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया । न्यायालय का कामकाज सामान्य तौर पर चलने लगा । ऐसा था श्री माथुर का स्नेहमय व्यक्तित्व और अपने न्यायिक अधिकारियों के प्रति बड़े भाई की जिम्मेदारी का एहसास ।

श्री माथुर जब लखनऊ के जिला जज बने, मैं उनके अधीन सिविल जज के रूप में कार्यरत था । कुछ समय पश्चात् प्रोन्नति पाकर मैं सिविल एण्ड सेशन्स जज के रूप में सीतापुर में तैनात हुआ । तब भी श्री माथुर लखनऊ के जिला जज थे । श्री माथुर के स्नेहमय व्यक्तित्व के साये में सेवा के आरम्भिक काल से उनके निधन तक मैं बराबर ही उनका स्नेहभाजन बना रहा । निकट के जनपद में जाकर भी उनसे मिलने लखनऊ आता-जाता था । मेरी प्रोन्नति से श्री माथुर जो मेरे सेवाकाल के प्रारम्भिक वर्ष से मुझसे जुड़े थे, प्रसन्न थे । सत्र न्यायाधीश के रूप में प्रोन्नति, अधीनस्थ न्याय सेवा के सदस्य को उच्चतर न्याय सेवा का सदस्य बना देती है ।

सीतापुर में सिविल एण्ड सेशन्स जज के रूप में मैंने वर्ष 1971 में कार्यभार ग्रहण किया था । यह घटना उसी जमाने की है । सुबह स्टेनो को कोई निर्णय बोल रहा था । तभी समाचारपत्र वाला पत्र दे गया । सरसरी तौर पर खास-खास खबरों पर नजर डाली । उसमें एक हृदयविदारक समाचार श्री माथुर के निधन का था— हृदय गति रुकने के कारण । निधन पिछले ही दिन हुआ था और अन्त्येष्टि अगले दिन होने वाली थी, जो वही दिन पड़ता था, जब मुझे श्री माथुर की मृत्यु की जानकारी

हुई। दिन के लगभग नौ बज रहे थे। तत्काल आकस्मिक अवकाश का प्रार्थनापत्र देकर लखनऊ के लिए बस से रवाना हुआ। सीधे भैंसाकुण्ड पहुँचा। सीतापुर से लखनऊ पहुँचने में और फिर लखनऊ पहुँचकर रिक्शे से भैंसाकुण्ड (गोमती के तट पर) श्मशान-स्थल पहुँचने में दिन के बारह बज गये। श्री माथुर की चिता की अग्नि बुझी नहीं थी। परिवार के लोग घर जा चुके थे। मैंने श्री माथुर की चिता को प्रणाम किया और एकान्त में जी भरकर रोया। फिर मैं श्री माथुर के निवास पर गया जो लखनऊ के जनपद न्यायाधीश का आधिकारिक निवास था।

घर पर उनके ज्येष्ठ पुत्र आत्मा की शान्ति हेतु पूजा पर थे जिसके पूर्ण होने पर वह मेरे पास आए। उन्हीं से वह सब विवरण सुनने को मिला जो निधन के सन्दर्भ में परिवार का कोई सदस्य जानना चाहता है जो निधन के समय घर से दूर था। तब तक कुछ लोग और आ गये जिनसे मिलने श्री माथुर के पुत्र बाहर चले गये। घर के भीतर हालनुमा कमरे में चौकी पर मैं अकेला बैठा था। इतने में ही हाल के दूसरे छोर पर उस दरवाजे से जो भीतरी बरामदे में खुलता था, मैंने श्री माथुर से बहुंत मिलते-जुलते एक व्यक्ति को हाल के अन्दर प्रवेश करते देखा। वे श्री माथुर से कुछ लम्बे थे। श्री माथुर दुबले-पतले थे। उनके मुकाबले में आगन्तुक व्यक्ति अधिक भरे-पूरे प्रतीत हुए। सफेद मलमल का कुर्ता, सफेद पाजामा पहने और अधरों पर पान की लाली लिए हुए उन्होंने मेरी ओर मुस्कुरा कर देखा। उनके बाल काले थे और उसी शैली में सँवारे हुए थे जिस शैली में श्री माथुर के सर के बाल अमूमन रहते थे। वे दिवंगत श्री माथुर से लगभग 10-12 वर्ष छोटे लगते थे। उन्हें देखकर श्री माथुर का कोई भी परिचित यह सहज अनुमान लगा सकता था कि वे श्री माथुर के छोटे भाई हैं।

मेरी ओर मुस्करा कर देखने के पश्चात् वे फिर उसी दरवाजे से भीतरी बरामदे में चले गए। मैंने मान लिया कि कल श्री माथुर के निधन का समाचार उनके छोटे भाई को भी मिला होगा जिससे वे भी अंत्येष्टि में शामिल होने लखनऊ आए। बात आई और गयी।

इसके कुछ वर्षों बाद श्री माथुर के उन्हीं ज्येष्ठ पुत्र से मेरी भेंट किसी न्यायिक अधिकारी सम्मेलन में हुई। उनके ज्येष्ठ पुत्र भी उस समय मेरी ही तरह न्यायसेवा में न्यायाधीश थे। श्री माथुर के एक और कनिष्ठ पुत्र थे। मैंने उनका हालचाल श्री माथुर के ज्येष्ठ पुत्र से पूछा। फिर पूछा और आपके चाचाजी आजकल कहाँ हैं।

'कौन से चाचाजी'।—श्री माथुर के ज्येष्ठ पुत्र ने पूछा।

'वही जो आपके पिताजी से बहुत ज्यादा मिलते हैं'—मैंने कहा।

'मेरे तो कोई चाचा ही नहीं हैं'—उन्होंने जवाब दिया।

'अरे वही चाचा जो आपके पापा के निधन में आए थे। उन्हें मैंने आपके निवास पर देखा था'—मैंने कहा।

'मेरे तो कोई चाचा ही नहीं हैं। पापा के निधन पर मेरे किसी चाचा के आने का सवाल ही नहीं उठता, और न मेरे कोई दूर-दराज के ऐसे रिश्तेदार हैं, जो पापा की तरह लगते हों'—'श्री माथुर के ज्येष्ठ पुत्र ने हैरत में डालने वाली बात कही।

और तब मुझे एकबारगी अनुभूत हुआ कि मृत्यु के पश्चात् भी अपने सहज स्नेह के कारण मेरे परम श्रद्धेय जज साहब मेरे सामने दो घड़ी को आ गये थे—शायद मुझे अन्तिम दर्शन देने के लिए। शायद कहने के लिए 'देखो ! मैं तो प्रसन्न हूँ—तुम क्यों उदास हो ?'

नज़रबंदी

बात वर्ष 1959-60 की है जब मैं प्रतापगढ़ में मुंसिफ के रूप में कार्यरत था। उस समय प्रतापगढ़ जिले में कोई जिला जज नहीं होता था। रायबरेली के जिला जज ही प्रतापगढ़ के भी जिला जज होते थे। प्रतापगढ़ में सेवारत वरिष्ठ सत्र न्यायाधीश प्रशासनिक कार्यभार प्रभारी के रूप में देखते थे। उस समय यह प्रभार श्री भृगुनारायण देख रहे थे जो प्रतापगढ़ आने के पूर्व वाराणसी जनपद में सत्र न्यायाधीश के रूप में कार्य कर चुके थे। वे अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे और उन्हें पहुँचे हुए साधु-संतों का सान्निध्य प्राप्त था। इन्हीं साधु-सन्तों में वाराणसी जनपद के उस जमाने के एक स्वामीजी थे जिनका नाम अभिलेख पर लाना उचित नहीं प्रतीत होता। भृगुनारायणजी के निमंत्रण पर स्वामीजी एक दिन पंजाब मेल से बनारस से प्रतापगढ़ पहुँचे। उनके साथ उनके पाँच या छः शिष्य भी थे। उनके आगमन की पूर्व सूचना भृगुनारायणजी ने जनपद में नियुक्त सभी अधिकारियों को दे दी थी। कभी कोई, कभी कोई अधिकारी स्वामीजी के दर्शन को आया।

स्वामीजी ने किसी को खाली हाथ नहीं लौटाया। स्वामीजी अपनी दाहिनी भुजा, मुट्ठीबन्द करे, ऊपर उठाते और कहते 'चलो !' और फिर वहीं सामने टेबल या आसन पर उस व्यक्ति के लिए कुछ न कुछ प्रसाद आ जाता था जैसे कुछ इलायची, कुछ फूल, कुछ मेवा या फिर कभी-कभी चाँदी के एक-दो सिक्के। स्वामीजी सबके सामने यह क्रिया करते थे। इसमें कहीं भी देखने वाले को किसी हाथ की सफाई की गुंजाइश नहीं लगती थी। स्वामीजी स्वयं एक धोती पहने रहते थे और बदन पर सिर्फ एक सैंडो बनियाइन। कहीं से भी मंच की जादूगरी का कोई सवाल ही नहीं था। यह इंद्रजाल भी नहीं था। जो वस्तु प्रसाद के रूप में स्वामीजी किसी को देते, उसे वह व्यक्ति घर पर ले जाता। वह सचमुच की वस्तु होती, ऐंद्रजालिक नहीं।

तीसरे दिन रविवार पड़ रहा था। शाम को छः बजे स्वामीजी भृगुनारायणजी के निवास पर हवन करने जा रहे थे। सभी अधिकारी निमंत्रित थे। समय छः बजे निर्धारित हुआ था। हवन, निवास के ऊपरी मंजिल के बाहरी बरामदे में सम्पन्न होना था जो काफी बड़ा था जैसी बारादरी होती है।

श्री भृगुनारायण का निवास पुरानी शैली का भवन था। घर में घुसने पर निचली मंजिल में बड़े-बड़े कमरे थे, आँगन था, दालान थी और भीतरी दालान से सीढ़ी ऊपर को जाती थी। ऊपर पहुँचने पर बड़ा-सा हाल पड़ता था। उस हाल में घुसने पर कुछ ही दूरी पर बाईं ओर एक दूसरे बड़े हाल के लिए दरवाजा था जिसकी आखिरी

छोर पर फिर बाईं तरफ एक दरवाजा उस बरामदे की ओर खुलता था जहाँ हवन का आयोजन था । उसी हाल की दाहिनी ओर का दरवाजा एक विश्राम कक्ष में खुलता था जिसमें स्वामीजी ठहरे थे ।

हवन की शाम कुछ अपरिहार्य कारणों से मुझे पहुँचने में थोड़ा विलम्ब हो गया । मैं लगभग सात बजे श्री भृगुनारायणजी के निवास पर पहुँचा और जब ऊपरी मंजिल पर पहुँचा, हवन पूर्ण हो चुका था और स्वामीजी अपने अनूठे ढंग से प्रत्येक अधिकारी को प्रसाद-वितरण कर रहे थे । हर बार वही प्रक्रिया अपनायी जा रही थी जिसकी चर्चा ऊपर कर चुका हूँ ।

मैं जब ऊपरी मंजिल में पहले कक्ष को छोड़कर उस कक्ष की ओर मुड़ा जिसके अंतिम छोर पर बायाँ दरवाजा बाहरी बरामदे की ओर खुलता था और दाहिना दरवाजा स्वामीजी के विश्राम कक्ष की ओर, तो मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि स्वामीजी के शिष्य दौड़-दौड़कर स्वामीजी के कक्ष से बरामदे में जाते थे और फिर दौड़कर हँसते हुए वापस स्वामीजी के कक्ष में आते थे और पुन: दौड़कर बरामदे की ओर जाते थे । यह सिलसिला बराबर चल रहा था और यह सब मैं आश्चर्य से खड़ा देख रहा था । कमरा हवन के धुएँ से भर गया था और स्वामीजी की बीच-बीच में आवाज 'चलो' सुनाई पड़ती थी जिससे सहज अनुमान लगता था कि प्रसाद वितरण चल रहा है ।

मैं जब बरामदे में पहुँचा (जहाँ हवन आयोजित था) तब तक प्रसाद-वितरण का कार्य पूर्ण हो चुका था । जो चर्चा चल रही थी उसमें एक चर्चा यह भी आई कि इसी हवन पात्र से आपने अत्यन्त सुगंधित महक फैलायी और कुछ ही क्षणों के बाद उसे मिर्च-मसाले की महक में बदल दिया ।

स्वामीजी ने सहज भाव से कहा, 'जीवन में सुख के पल और दु:ख के पल कभी भी आ सकते हैं । इनके बीच विशेष अंतराल नहीं है । इसी का बोध आप लोगों को कराया गया है ।'

बगल में बैठे अपने मुंसिफ मित्रों से पूछा—'आपको क्या मिला ?' एक ने अपने हाथ में पड़ी दो सुपारी दिखलाई । एक ने लौंग, इलाइची दिखलाई । मेरे मित्र ने धीरे से कहा, 'कलेक्टर साहब फायदे में रहे । उन्हें चाँदी का पुराना सिक्का मिला' ।

अगले रोज जब न्यायालय के विश्राम कक्ष में हम मुंसिफ मित्रों से मिले तब मैंने अपनी जिज्ञासा रखी—'स्वामीजी के वे शिष्य दौड़-दौड़कर बाहर-भीतर क्या कर रहे थे ?' मेरे मुंसिफ मित्र मेरा मुँह देखने लगे और दोनों ने मुझसे कहा—'ऐसा तो हमने कुछ भी नहीं देखा ।'

मैंने उन्हें सारी घटना बतलाई जिसको ऊपर लिख चुका हूँ । फिर हम तीनों मुंसिफ इसी नतीजे पर पहुँचे कि प्रसाद-वितरण अथवा हवन-कुण्ड से भिन्न प्रकार

की गन्ध, यह सब इन शिष्यों के माध्यम से ही संभव हुआ जिन्हें पूजा में उपस्थित कोई भी अधिकारी किसी नज़रबंदी के कारण नहीं देख सका। देर से आने के कारण मैं नज़रबंदी के दायरे से बाहर था।

मैं नहीं जानता हमलोगों के इस नतीजे की चर्चा मेरे मुंसिफ मित्रों ने कहीं और की या नहीं। स्वामीजी और उनकी शिष्य-मण्डली उसी दिन किसी अति आवश्यक कार्य के कारण वाराणसी लौट गयी यद्यपि अभी खुद कलेक्टर साहब के निवास पर हवन होना बाकी था।

नज़रबंदी ही सही पर इतने प्रबुद्ध लोगों को एक साथ नजरबंद कर लेना— उपहास का नहीं, शोध का विषय है।

सच पूछिए तो स्वामीजी की जिस नज़रबंदी का जिक्र मैं कर चुका हूँ उसने मुझे और न्यायपालिका से जुड़े मेरे मित्रों को चिंतित कर दिया। आदलत में हमारा निर्णय बहुत हद तक मौखिक साक्ष्य की विश्वसनीयता से प्रभावित होता है। गवाह विश्वसनीय है तो कोई कारण नहीं है कि कही बात पर विश्वास क्यों न किया जाए। फिर जहाँ गवाह शपथ पर उस तथ्य की बाबत बयान दे रहा है जिसे उसने अपनी आँखों से देखा है और जिसे मन से मानता है कि सत्य है तो उस साक्ष्य का एक अलग ही असर होता है। ऐसा बयान अपने को स्वीकार करवा लेने की क्षमता रखता है। ऐसे गवाहों को कैसे अविश्वसनीय कहा जाएगा जिन्होंने स्वयं अपनी आँखों से, नज़रबंदी के तहत ही सही, ऐसी बातें देखीं जिन्हें वे बिल्कुल पास से देख रहे थे और जो हाथ की सफाई नहीं थी।

उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा ने अपने अमर उपन्यास 'चित्रलेखा' में इंद्रजाल से पूरे दरबार के समक्ष योगी द्वारा ईश्वर के प्रकाशपुंज का अवतरण दिखलाया है। किन्तु वह सामूहिक सम्मोहन का उदाहरण है जिसका दावा कभी-कभी मंच के जादूगर भी करते हैं। घट कुछ भी नहीं रहा है किन्तु सामूहिक सम्मोहन के प्रभाव से सभी लोग वह देख रहे हैं जिसकी परिकल्पना सम्मोहक ने प्रदर्शन के संदर्भ में कर रखी है। नज़रबंदी में जो कुछ भी हो रहा है उसके पीछे भौतिक कारण हैं। किन्तु दर्शक जो नज़रबंदी के प्रभाव में उन्हें वैसा ही देख पा रहा है, सहज विश्वास करता है कि वह वाकई ऐसा देख रहा है।

ऐसे दर्शक को शपथ पर बयान देने में कोई हिचक या संकोच नहीं होगा कि उसने सचमुच ऐसा ही देखा जिसकी बाबत वह बयान दे रहा है।

एक और घटना का उल्लेख करना चाहूँगा। यह घटना एक नजीर में इलाहाबाद ला जर्नल के आरम्भिक पृष्ठों में उद्धृत है। न्यायालय में न्यायाधीश के समक्ष खड़े व्यक्ति के मुख से अचानक अनेक गौरैय्या पक्षी निकलने लगे जिस बात का साक्षी पूरा इजलास था। अब यह नज़रबंदी की बात थी या सामूहिक इन्द्रजाल

था या वाकई ऐसी घटना घटी, इसकी सत्यता कौन बतायेगा ? इसीलिए हमलोग जो न्यायपालिका के सदस्य थे, उपरोक्त घटना से चिंतित हुए ।

हमारे यहाँ यह एक बड़ी दुराग्रह वाली प्रवृत्ति है कि जिस प्रश्न का समाधान हम बुद्धि की तुला पर नहीं कर सकते हैं उसे हम तत्काल हाथ की सफाई या कुछ ऐसी ही बात बतला देते हैं । मुझे स्वामीजी वाली घटना को अभिलिखित करते हुए यह आशा है कि तटस्थ प्रबुद्ध वर्ग इस लुप्तप्राय विद्या के बारे में अधिक जानकारी पाने का प्रयास करेगा ।

*

श्राप

शकुंतला और दुष्यंत की कहानी बचपन में सुनी हुई कहानियों में से एक है। दुष्यन्त की याद में खोई शकुन्तला को दुर्वासा का श्राप लगा और जब शकुंतला को लेकर आश्रम की कन्याएँ दुष्यन्त के दरबार में पहुँचीं, श्राप-ग्रस्त दुष्यन्त शुकुन्तला को पहचान नहीं पाये। इसी तरह से बचपन में सुनी कहानियों में से श्राप ग्रस्त अहिल्या की कहानी है। पति गौतम ऋषि के श्राप से अहिल्या पाषाण बन गई।

दोनों की कहानियों का अंत तब सुखद हुआ जब मछली के पेट से निकली अपनी अँगूठी को देखकर दुष्यंत को शकुंतला और उसके साथ जुड़ी सब बातें याद आ गईं। अहिल्या की कहानी का भी सुखद अंत हुआ जब श्रीराम के पावन चरण पड़ने पर वह पुन: पत्थर से अहिल्या बन गई। एक तीसरी कहानी उस यायावर यहूदी की है जिसकी बाबत कहा जाता है कि वह आज भी अशांत मन लिये विश्वभर में यहाँ से वहाँ घूम रहा है। शताब्दियों पूर्व, लगभग दो हजार वर्षों पूर्व जब ईसामसीह को सूली पर लटकाने के लिए ले जाया जा रहा था तब अकारण ही अपनी नादानी में उस यहूदी ने ईसामसीह पर हिंसात्मक प्रहार किया था। इस अपराध के सन्दर्भ में वह दैवी श्राप से ग्रस्त हुआ। इसी श्राप के कारण वह आज भी जीवित बेचैन अवस्था में अपना अशांत मन और क्लांत शरीर लिये भटक रहा है। इस श्रापग्रस्त यायावर के दु:ख का आज तक अंत नहीं हुआ। हम सभी यह मानते हैं कि किसी की हाय नहीं लगनी चाहिए। असहाय और निर्बल की हाय अपना असर दिखलाती हैं। इसके अनेक उदाहरण आपने देखे या सुने होंगे।

वर्ष 1985 में जब मैं जनपद गाजीपुर में जनपद न्यायाधीश के रूप में कार्यरत था, प्रसंगवश मेरी जानकारी में श्राप की ऐसी ही एक घटना आयी। उपरोक्त तीनों घटनाओं में चाहे शकुंतला की घटना या अहिल्या की घटना या यायावर यहूदी की घटना, दैवी श्राप की महत्वपूर्ण भूमिका देखी जा सकती है। गाजीपुर की जिस घटना का जिक्र कर रहा हूँ उसमें महत्वपूर्ण भूमिका अभियुक्त की थी। मुझे पता चला कि कई दशक पूर्व जनपद गाजीपुर के सत्र न्यायाधीश ने एक कत्ल के मामले में अभियुक्त को फाँसी की सजा सुनाई। कत्ल के मामले में यदि अभियुक्त दोषी पाया जाता है तब न्यायाधीश या तो प्राणदण्ड की सजा सुनाता है या आजन्म कारावास की। प्राणदण्ड उचित मामलों में दिया ही जाता है। कोई असामान्य बात प्राणदण्ड की सजा के संदर्भ में नहीं है।

सम्बन्धित मामले में प्राणदण्ड की सजा सुनने के बाद अभियुक्त ने न्यायालय से बाहर जाते-जाते सत्र न्यायाधीश को श्राप दिया—'मैं बिल्कुल बेगुनाह हूँ फिर भी

आपने मुझे फाँसी की सजा सुनाई। अगर कोई ईश्वर है तो इस गलत फैसले की सजा आपको जरूर देगा।' श्राप देकर अभियुक्त पुलिस की अभिरक्षा में जेल चला गया। जज साहब का मूड फिर काम करने का नहीं रहा और वे आवश्यक काम निपटाकर घर चले गये।

अब इसे महज़ एक इत्तिफाक कहिए या जज साहब की अस्वस्थता का परिणाम या श्राप का असर। जज साहब जब रात को सोये तो फिर सुबह उठे ही नहीं। रात में ही किसी चिकित्सीय कारण से उनकी हृदयगति रुक गई, हार्ट फेल कर गया। जनपद में इसकी गरम चर्चा चली और कई लोगों ने इसे अभियुक्त के श्राप से जोड़ दिया। यह चर्चा तब भी जीवित थी जब मैं जनपद न्यायाधीश के रूप में गाजीपुर जनपद में कार्यरत हुआ। मुझे तो महज एक इत्तिफाक ही लगता है कि जज साहब का हार्ट फ़ेल जिस रात को हुआ उसके ठीक पहले अभियुक्त की श्राप वाली घटना घटी। अगर अभियुक्त श्राप नहीं देता तो भी शायद हार्टफेल की बात को रोका नहीं जा सकता था। किन्तु जनपद के सीधे-सादे लोग इसे श्राप की ही घटना मानते थे। घटना को इतने दिन बीत चुके थे कि अभिलेखागार में इस प्रकार का कोई दस्तावेज नहीं मिला जिससे पता चले कि मुकदमा क्या था या अपील में इस निर्णय की पुष्टि की गई या निर्णय निरस्त कर दिया गया। न्यायालय तो निर्णय अभिलेख पर आए साक्ष्य के आधार पर ही देता है।

मैं जज साहब की बात नहीं कर रहा हूँ। फिर भी मानस का वह प्रसंग बरबस ही ध्यान में आता है जहाँ भ्रमवश श्रवण कुमार दशरथ के हाथों मारे गये। श्रवण कुमार के अंधे माता-पिता की प्यास बुझाने स्वयं दशरथ उनके पास पहुँचे और भारी मन से अपनी भूल का विवरण दिया। तब उन्हें भी माता-पिता का श्राप लगा— 'तुम्हारा भी शरीर इसी तरह पुत्र-वियोग में छूटेगा।' इतना कहकर श्रवण कुमार के माता-पिता ने शरीर को त्याग दिया था।

मैं तो यही कहूँगा जहाँ तक हो सके हर पल अत्यंत सावधानी बरतिये। किसी के मन को दु:ख न पहुँचाइये। पूर्ण निष्ठा से कर्तव्य निष्पादित कीजिए और फल को प्रभु के हाथ छोड़ दीजिए।

*

नेपाल की जीती-जागती देवी

पड़ोसी देश नेपाल में आज भी काठमाण्डू में जीवित देवी या 'लिविंग गॉडेस्' का महत्त्व है । इनके एक दर्शन के लिए महल के आँगन में श्रद्धालुओं की अपार भीड़ देखी जा सकती है । ऊपर मंजिल के परकोटे में मध्य के वातायन पर कुछ क्षणों के लिए जीवित देवी आँगन में खड़े भक्तजन को दर्शन देती हैं और फिर अपने कक्ष में चली जाती हैं । जीवित देवी के दर्शन पाकर दर्शक भक्त अपने को धन्य मानता है, माँ को श्रद्धानत हो प्रणाम करता है, माँ की जय-जयकार करता है ।

देवी के समीप किसी के भी जाने का प्रश्न नहीं है । भीतरी आँगन से सीढ़ी ऊपर जाती है पर उस सीढ़ी से ऊपर वही जा सकते हैं, जो देवी के महल की व्यवस्था यथा पूजा-अर्चना आदि से जुड़े हों । अन्य कोई भी व्यक्ति सीढ़ी से ऊपर नहीं जा सकता । महल के ऊपरी भाग में ही वह विशेष कक्ष भी है जहाँ देवी सिंहासन पर पर्व या अवसर विशेष पर आसीन होती हैं जब नेपाल नरेश उनकी पूजा-अर्चना करते हैं । जीवित देवी का कुमारी रूप है । शैशवकाल में ही बालिका के रूप, गुण, लक्षण, आदि विशिष्ट पहचान से बालिका का चयन होता है और नियुक्त अभिभाविका की देखरेख में वह बालिका देवी के रूप में शनैः-शनैः विकसित होती है और जब जीवित देवी के पद पर आसीन देवी सयानी होने के कारण देवी-पद छोड़ती हैं तब वह बालिका जिसका प्रशिक्षण और उत्तरोत्तर दैवी विकास भावी जीवित देवी के रूप में अभिभाविका की देखरेख में हुआ है, देवी-पद पर आसीन होती है जिसे पहले की जीवित देवी ने यौवन अवस्था में पदार्पण करने के कारण (सयानी होने के कारण) छोड़ दिया । यह क्रम चलता रहता है जिससे जब भी जीवित देवी का पद, आसीन देवी छोड़ें—रिक्ति की पूर्ति तत्काल कर ली जाये ।

पाषाण में शास्त्र-सम्मत तरीके से प्राण-प्रतिष्ठा हो सकती है तो फिर पवित्र कुमारी बालिका में भी देवी का अवतरण क्यों नहीं संभव है ? जीवित देवी के पद पर आसीन उस कुमारी बालिका के लिए पूरा नेपाल और बाहर से आये भक्त इस प्रकार श्रद्धानत होते हैं जैसे-प्राणमयी देवी की मूर्ति से साक्षात् देवी अवतरित हो गई हों । इसीलिए जीवित देवी के महल में जीवित देवी-पद पर आसीन बालिका को साक्षात् देवी के रूप में स्वीकार किया जाता है और इस पद पर देवी सदा आसीन रहती हैं । यह पद कभी रिक्त नहीं रहता । रिक्ति की दशा में देवी के महल में ही रह रही वह कुमारी बालिका जीवित देवी का आसन ग्रहण कर लेती है और जीवित देवी के पद पर आसीन कर दी जाती है जिसे भावी जीवित देवी के रूप में शास्त्रानुसार, धर्माचरणानुसार, शास्त्र-सम्मत तरीके से अभिभाविका की देख-रेख में

सुयोग्य सक्षम हाथों द्वारा प्रशिक्षित किया गया, सँवारा गया। देवी के महल की सारी व्यवस्था में नेपाल राज्य और नेपाल का राजघराना सेवारत रहता है। विश्व में मुझे ऐसा कोई दूसरा उदाहरण देखने को नहीं मिला।

वर्ष 1979 में महाशिवरात्रि के पर्व पर मैंने काठमांडू-यात्रा का कार्यक्रम बनाया जिससे भगवान् पशुपतिनाथजी के दर्शन का सौभाग्य मिले। शिवरात्रि के दिन का अधिकांश भाग तो पशुपतिनाथजी की पूजा-अर्चना में बीत गया, जो समय बचा उसे भी मंदिर के विशाल परिसर में ही व्यतीत किया। अगले दिन जीवित देवी के दर्शन की उत्कट अभिलाषा लिये जीवित देवी के महल में लगभग 11 बजे दिन में पहुँचा। जीवित देवी के महल के प्रांगण में बेहद भीड़ थी। शिवरात्रि पर्व पर बहुत से ऐसे भी तीर्थयात्री काठमांडू आये थे जो नेपाल देश के नहीं थे। जीवित देवी थोड़ी देर के लिए ऊपरी परकोटे में वातायन के पीछे खड़ी हो गईं और उनका दर्शन करके प्रांगण में खड़ी भीड़ भक्ति-विभोर हो उठी। देवी फिर वातायन से पीछे हट गईं और आँगन की भीड़ धीरे-धीरे महल से बाहर जाने लगी।

न जाने किस दैवी-प्रेरणा से मेरे मन में यह विचार आया कि देवी तो माँ का रूप हैं। उनके सान्निध्य में बालक को जाने का नैसर्गिक अधिकार है। बिना कुछ सोचे-समझे और बिना इस पर विचार किये हुए कि नियम के उल्लंघन का क्या परिणाम होगा, नंगे पाँव सीढ़ी के रास्ते मैं ऊपरी मंजिल पहुँच गया जिसके परकोटे के वातायन से जीवित देवी ने आँगन में खड़ी भीड़ को दर्शन दिया था। ऊपर जाना सभी के लिए वर्जित था और केवल वही जा सकते थे जो व्यवस्था के संदर्भ में अधिकृत थे। जब मैं ऊपरी मंजिल पर पहुँचा, जीवित देवी की अभिभाविका जो देखने से लगभग 70-80 वर्ष की वृद्ध महिला लगती थीं और अपनी व्यक्तिगत साधना के कारण स्वयं में तेजमयी मूर्ति का आभास देती थीं, मेरे समीप आयीं और मुझसे पूछा—'आपका परिचय ?'

मैंने कहा—'मैं काशी से माँ के चरणस्पर्श के लिए आया हूँ। न्यायाधीश के रूप में सेवारत हूँ।'

इस बात को कहते-कहते मैं भाव-विह्वल हो गया। कुछ काशी के नाम का प्रभाव, कुछ मेरे रुँधे कंठ से निकले स्वर का प्रभाव, कुछ मेरी भाव-विह्वलता का प्रभाव। आदरणीया अभिभाविका मुझे अंदर की ओर ले गयीं। वहाँ देवी के बैठने के लिए आसन लगा हुआ था। मुझे आसन के सामने बैठने का संकेत देकर, अभिभाविका जीवित देवी को लेने अंदर के कक्ष में चली गईं। कुछ ही क्षणों में मेरे सामने साक्षात् जीवित देवी प्रकट हुईं और अपने आसन पर आसीन हुईं। मैं हाथ जोड़े खड़ा था। संकेत मिलते ही मैं सामने बैठ गया और माँ के श्रीचरणो में मत्था टेक दिया। बहुत से आशीर्वादों का, बहुत-सी मनोकामनाओं की बात मेरे अन्तर्मन ने देवी के प्रकट होने के पूर्व जरूर सोची होगी। माँ से यह माँगूँगा—माँ से यह

कहूँगा । किन्तु श्रीचरणों पर मत्था टेकने के बाद जैसे सब कुछ भूल गया और छोटे बालक की तरह अविरल रोने लगा । कुछ समय पश्चात् चित्त स्थिर हुआ तब बैठ सका । फूल-माला आदि के चढ़ाने का तो वहाँ सवाल ही नहीं उठता था । देवी तक कोई पहुँच नहीं सकता था । मैं भी बिना फूल-माला के था । कोट की जेब में हाथ डाला । थोड़े नेपाली सिक्के मुट्ठी में आये उन्हें पुष्प के रूप में माँ के चरणों में अर्पित कर दिया । मुझे अच्छी तरह से याद है, वाणी के नाम पर मेरे मुँह से केवल 'माँ-माँ' निकलता रहा । मैं और कुछ भी नही बोल पाया । अभिभाविका ने मेरी दशा देखकर देवी से कहा—'इनका अभिषेक करो' । और देवी ने तब समीप ही रखे चंदन और रोली की कटोरी से मेरे माथे पर टीका लगा दिया । इसके पश्चात् देवी माँ खड़ी हो गईं । मैं भी खड़ा हुआ । मेरे हाथ प्रणाम की मुद्रा में जुड़े हुए थे और आँखों में आँसू थम नहीं रहे थे । जाने के पहले अभिभाविका ने एक छोटी बालिका को बुलाया और उससे कहा—'इन्हें सिंहासन का दर्शन करा दो ।' बालिका मुझे लेकर गई । यह ऊपरी मंजिल में परकोटे का दूसरा भाग था । सभी दीवालों पर धार्मिक प्रसंगों को लेकर तैलचित्र बने थे । लंबी गैलरी फिर बाँयी ओर मुड़ी और वहीं मैंने देवी के उस सिंहासन का दर्शन किया जिस पर विजयदशमी के दिन देवी आसीन होती हैं और नेपाल नरेश उनकी पूजा करते हैं । सिंहासन के आगे की भूमि पर मैंने मत्था टेका और फिर उठकर वापस आया । नीचे जाने की सीढ़ी के द्वार पर वही अभिभाविका मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं । उन्होंने मुझसे दो बातें कहीं, 'दुबारा दर्शन करना हो तो नीचे आँगन से ही करना । अपने ऊपर आने की बात नेपाल प्रवास तक किसी से मत करना ।'

मैं नीचे उतरा । आँगन से लोग जा चुके थे । मन में एक अद्भुत आनन्द लिये देवी की कृपा के सागर की हिलोरों में बहता मैं अपने विश्राम-स्थल पहुँचा और फिर ऐसी सुखद नींद में सो गया जैसे माँ की लोरी सुनते-सुनते कोई बच्चा सो जाये ।

*

प्राचीन भारत और नेपाल में त्वरित न्याय

आस्था की अभिव्यंजना का आयाम नहीं देखा जाता। नमन की तुलना नहीं होती। केवल मन की पवित्रता की सुरभि की लहरियाँ मन को मन से जोड़ती रहती हैं। अध्यात्म की भीनी-भीनी खुशबू वातावरण को एक ऐसे लोक में परिवर्तित कर देती है जहाँ जो कुछ है—सत्य है, शिव है, सुन्दर है—जहाँ पाप को पाँव रखने का भी स्थान नहीं है। एक झीनी चादर ने जैसे अपने स्नेहमय आँचल में दो देशों को ढँक लिया हो। भारत और नेपाल का कुछ ऐसा ही सांस्कृतिक सम्बन्ध है।

संस्कृति, जिसके आधारस्तंभ हैं, धर्म, साहित्य, सामाजिक स्तर, ह्रदय का स्पंदन और बौद्धिक चिंतन दोनों ही देशों के जीवन स्तर को प्रभावित करती है—जीवन के हर क्षेत्र में अपनी झलक दिखलाती है जिसका दर्शन कर दर्शन करनेवाला कहता है—'अरे, यह तो अपना ही रूप है।'

बात चाहे हिमालय की हो, चाहे फूलों और हरियाली से लदी सुरम्य वादियों की—एक अभूतपूर्व सौंदर्य तत्व दोनों ही देशों को अपनी अलौकिकता में सम्मोहित रखता है। दोनों ही देशों में वह वंदनीय हैं। हाँ ! नाम का अन्तर हो सकता है, ठीक उसी तरह जैसे काशी में विश्वनाथ नाम है और नेपाल में पशुपतिनाथ नाम दोनों ही महादेव के वंदनीय रूप हैं।

मुझे क़भी-कभी बड़ा आश्चर्य होता है, जब मेरा ध्यान मध्यकालीन भारत और मध्यकालीन नेपाल में किसी आपराधिक मामले में त्वरित निस्तारण हेतु अपनाई गयी प्रक्रिया की ओर जाता है। अपने देश में तो आपने सुन ही रखा होगा कि प्राचीन काल में इस प्रश्न के त्वरित निस्तारण के लिए क्या किसी अपराध दोष का आरोपी व्यक्ति सत्य कह रहा है या असत्य इसके लिए उसकी हथेलियों पर आग में तपा लोहे का गोला रखा जाता था। अभियुक्त प्रभु का नाम लेते आगे बढ़ता हुआ कुछ कदम चलता था। यदि फिर भी पूर्व निर्धारित क्षण बीतने पर करतल पर झुलसने का चिह्न वहीं उभरता था, तो उस व्यक्ति की निर्दोषता स्वीकार कर ली जाती थी। यदि हथेली झुलस जाती थी तो उसे दोषसिद्ध अपराधी माना जाता था और न्यायाधीश के दायित्व का निर्वहन करने वाला व्यक्ति ऐसे दोषसिद्ध व्यक्ति को अपराध की प्रकृति को देखते हुए दंडित करता था।

लगभग ऐसी ही बात मुझे नेपाल के मध्यकालीन इतिहास में देखने को मिली। उस समय नेपाल में कोटिलिंगेश्वर (महादेव का एक नाम) का अति सम्मानित मंदिर था। किसी अपराध का अभियुक्त यदि अपने ऊपर लगाए गये आरोप को अस्वीकार

करता था तब उसके आपराधिक मामले के त्वरित निस्तारण के लिए यह विधान था कि न्यायाधीश के समक्ष वह अपराधी, कोटिलिंगेश्वर शिवलिंग को स्पर्श कर अपने को निर्दोष घोषित करे। यदि वह सचमुच निर्दोष होता था, सब कुछ सामान्य रहता था, और न्यायाधीश उसे दोषमुक्त घोषित कर उसकी तत्काल रिहाई का आदेश पारित कर देता था, किंतु यदि अभियुक्त ने गलत तौर से या असत्य रूप से अपने को शिवलिंग का स्पर्श करते हुए निर्दोष घोषित किया, उसे तत्काल दैवी दंड भुगतना पड़ता था। अभियुक्त द्वारा असत्यता की घोषणा के साथ ही, तत्काल, असत्य घोषणा करने वाला अभियुक्त रक्त-वमन करता था और उसका निष्प्राण शरीर रक्त-वमन करते शिवलिंग के समक्ष धरा पर गिर पड़ता था। है न कितनी आश्चर्यजनक बात जिस पर कोई सहज रूप से विश्वास नहीं करेगा। किंतु प्राचीन और मध्यकालीन नेपाल में यह त्वरित न्याय की सामान्य प्रक्रिया थी।

मैं भी मध्यकालीन भारत में (मध्यकाल का उल्लेख इसलिए कर रहा हूँ क्योंकि मध्यकाल तक तो इस प्रक्रिया के अपनाये जाने के अभिलेख मिलते हैं), त्वरित न्याय की इस प्रक्रिया पर सवालिया निशान मन में लगाता था। मन में यह बात बार-बार उठती थी कि कैसे यह सम्भव है कि आग में तपाया लोहे का लाल गोला किसी व्यक्ति की हथेली पर रखा जाए और उसकी हथेली न झुलसे। अतः मन इसको स्वीकार नहीं करता था कि त्वरित न्याय की इस प्रक्रिया में न्यायसंगत कोई पहलू है। मन में उठे संदेह के अनुसार प्रत्येक दशा में चाहे अभियुक्त ने अपराध किया हो या निर्दोष हो, उसकी हथेली को झुलसना ही झुलसना था। कहाँ लोहे का तपता गोला और कहाँ करतल की कोमल त्वचा। किंतु जब मैंने नेपाल में आपराधिक मामलों के त्वरित निस्तारण के संदर्भ में उपरोक्त कसौटी का ऐतिहासिक अभिलेख पढ़ा, मुझे अपने यहाँ की उपरोक्त त्वरित निस्तारण की प्रक्रिया पर सवालिया निशान लगाने का औचित्य नहीं प्रतीत हुआ। कोटिलिंगेश्वर का पावन शिवलिंग तो पवित्र जल, दूध और दही के चढ़ाए जाने से शीतल मूर्ति थी। उसके स्पर्श से इस प्रकार का असामान्य परिणाम कभी भी संभव नहीं था कि यदि अभियुक्त अपराध के संदर्भ में शिवलिंग का स्पर्श करते हुए गलतबयानी करे तो वह तत्काल मृत्युदण्ड से दण्डित हो। अब यदि नेपाल में प्राचीन और मध्यकाल में यह बात सामान्य रूप से देखी जा सकती थी तो अपने यहाँ जब किसी अपराध का आरोपित व्यक्ति शपथ पर अपने को निर्दोष कहता था और उसकी हथेली पर आग में दहकाया गया लोहे का लाल गोला रख दिया जाता था तब दैवी विधान के अधीन उसके निर्दोष होने के संदर्भ में यह बात क्या संभव नहीं थी कि उसके निर्दोष होने की दशा में उसकी हथेली उन कुछ दैवी क्षणों में न झुलसे जिन क्षणों में अभियुक्त उस दहकते गोले को हाथ में लिए कुछ पूर्व निर्धारित चरण प्रभु का नाम लेते हुए चलता था ?

दोनों ही देशों में (नेपाल और भारत में) यह न्यायिक प्रक्रिया कब लुप्त हुई इसका निश्चित अभिलेख मुझे देखने को नहीं मिला। नेपाल के इतिहास में भी मुझे

इस अद्भुत त्वरित न्याय के विलोप की तिथि नहीं मिली। किंतु एक अद्भुत मर्मस्पर्शी ऐतिहासिक संदर्भ मेरी जानकारी में आया जिसमें नेपाल और भारत के पारस्परिक सम्बन्धों के प्रगाढ़ रिश्तों की और पारस्परिक सांस्कृतिक प्रभाव की मधुर तस्वीर थी।

नेपाल नरेश नरसिम्ह की एकमात्र संतान प्रताप मल्ल (1641-1674 ई०) हुए। इनका विवाह भारत के कूच बिहार की दो राजकुमारियों से हुआ जो सगी बहनें थीं। बड़ी बहन का नाम रूपमती था और छोटी बहन का नाम अंनतप्रिया था। भारत में जन्मीं और भारत की संस्कृति में पलीं इन दोनों राजकुमारियों की सोच से नेपाल नरेश प्रताप मल्ल निश्चित रूप से प्रभावित हुए। प्रताप मल्ल ने इस त्वरित न्याय की प्रक्रिया में जो सुधार किया वह सम्भवत: कूच बिहार की इन दो राजकुमारियों की देन थी। इन दोनों राजकुमारियों ने नेपाल नरेश प्रतापमल्ल की सोच को प्रभावित किया। त्वरित न्याय की प्रक्रिया में नरेश के हाथ, एक अत्यंत महत्वपूर्ण संशोधन हुआ।

अभियुक्त कोटिलिंगेश्वर महादेव को स्पर्श कर अपनी निर्दोषता अगर असत्य रूप में घोषित करता था, तत्काल रक्त-वमन करते शिवलिंग के सामने ही मृत्यु को प्राप्त होता था। यह कार्यवाही न्यायाधीश के सामने होती थी। यदि अभियुक्त की घोषणा के पश्चात् उसे सामान्य स्थिति में ही देखा जाता, उसकी तत्काल रिहाई का आदेश न्यायाधीश अभियुक्त को निर्दोष घोषित करते हुए पारित करता। किंतु यदि अभियुक्त रक्तवमन करते हुए शरीर छोड़ देता तब न्यायाधीश द्वारा किसी अग्रिम कार्रवाई की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ती। अभियुक्त को तो कठोरतम दण्ड कोटिलिंगेश्वर महादेव द्वारा ही मिल चुका था। नेपाल नरेश प्रताप मल्ल ने इस प्रक्रिया में संशोधन इस प्रकार किया कि किसी आपराधिक मामले में जब न्यायाधीश और अभियुक्त कोटिलिंगेश्वर महादेव के समक्ष त्वरित न्याय हेतु उपस्थित हों, तब बजाय अभियुक्त के, स्वयं न्यायाधीश शिवलिंग का स्पर्श करके बतलाये कि क्या अभियुक्त ने सत्य रूप से अपने को निर्दोष कहा है अथवा असत्य रूप से। दोनों ही दशाओं में न्यायाधीश के ऊपर कोई प्रत्यक्ष शारीरिक प्रतिक्रिया नहीं होती थी। ऐसा लगता है कि जब अभियुक्त अपने को निर्दोष घोषित करता था और न्यायाधीश तत्पश्चात् शिवलिंग का स्पर्श करता था तब उसे दैवी अन्त:प्रेरणा मिलती थी कि अभियुक्त ने सही बात कही है या असत्य कही है। वह अपनी दैवी अंत:प्रेरणा के अनुसार अभियुक्त को दोषसिद्ध अपराधी या दोषमुक्त अपराधी घोषित करता था। दोषसिद्धि की दशा में अपराध-प्रकृति को देखते हुए अभियुक्त को दण्डित करता था।

न्यायिक प्रक्रिया में इस संशोधन की कुछ अवधि बीतने पर किसी स्तर पर इस प्रकार की त्वरित न्याय की कसौटी शनै:-शनै: विलुप्त हो गयी। ठीक उसी तरह जैसे अपने देश में भी अभियुक्त की हथेली पर रखा आग का दहकता गोला शनै:-शनै: ठण्डा पड़ गया। किंतु जब गोला कभी हथेली पर दहकता था और करतल की त्वचा अभियुक्त को निर्दोष होने की दशा में झुलसती नहीं थी, जब अभियुक्त

कोटिलिंगेश्वर महादेव का स्पर्श कर अपने को निर्दोष घोषित करता था और असत्य बोलने की दशा में शिवलिंग के समक्ष रक्तवमन करता था और उसका निष्प्राण शरीर शिव के दरबार में गिर पड़ता था, इस पर जब कभी ध्यान जाता है तब उस अलौकिक रहस्यमयी सत्ता के प्रति मन नमन करता है जो दोनों ही देशों की संस्कृति का नियामक है चाहे वह संस्कृति नेपाल की हो चाहे भारत की ।

नैनीताल का वह गेस्ट हाउस

वर्ष 1986 में मैं गोरखपुर में जिला जज के पद पर कार्यरत था। उस समय न्यायिक सेवा के अधिकारियों को ट्रेनिंग नैनीताल में दी जाती थी। ट्रेनिंग के संदर्भ में न्यायसेवा के वरिष्ठ अधिकारी समय-समय पर संस्थान द्वारा निमंत्रित किये जाते थे जिनके ठहरने की व्यवस्था के लिए जो आवास आवंटित था वह एक बहुत पुराना बँगला था। पुराने डिजाइन के बड़े-बड़े हालनुमा कमरे थे जिनमें अंदर ही अंदर आने-जाने के लिए भीतरी द्वार थे।

इन्हीं कमरों में से एक कमरे में मैं ठहराया गया था। मेरे बगल के कमरे में मेरे ही बैच के जिला जज स्तर के एक न्यायिक अधिकारी ठहरे थे। कमरे सुसज्जित थे—ड्रेसिंग टेबिल पर बड़ा शीशा, डबल बेड, बाथरूम आदि। नैनीताल में पंखे की आवश्यकता तो नहीं थी पर लगता है अंग्रेजों के जमाने में इन कमरों में सीलिंग फैन भी लगे रहे होंगे। कमरे के मध्य भाग में ऊपर देखने से स्पष्ट पता चलता था कि कभी इन छतों से सीलिंग फैन लटकते रहे होंगे। बिजली उपकरण के कुछ अवशेष अब भी जर्जर स्थिति में लगे हुए थे।

लेक्चर सुबह दस बजे से होने थे। उनकी तैयारी रात काफी देर तक हम लोग करते थे। एक रात मेरे बगल के कमरे में ठहरे जज साहब सहमें हुए मेरे कमरे में बीच के दरवाजे से आए जो हम लोग खुला ही छोड़े रखते थे। मुझसे कहा—'मैं तुम्हारे कमरे में सोना चाहता हूँ।'

हर कमरे में दो-दो बेंड पड़े हुए थे। हम लोगों के एक-एक बेड खाली ही थे। मैंने उनसे कोई सवाल नहीं किया। अपना पाठ तैयार करता रहा। मेरे साथी मेरे कमरे में खाली बेड पर सो गये। और सुबह किसी वक्त अपने कमरे में चले गये। दिन में लेक्चर के बाद जब हम दोनों अपने कमरों में विश्राम के लिए आए तब मेरे पूछने पर उन्होंने बताया कि दो-तीन दिन से रात के ठीक बारह बजे उनके कमरे की अँदरूनी छत पर बीच में लगे पंखे के स्विच से खटके की आवाज दो-तीन बार आती है और फिर बंद हो जाती है। इसे पहले उन्होंने बिजली की कोई गड़बड़ी के कारण समझा। पर जब दो-तीन दिन ठीक बारह बजे मध्य रात्रि में यह घटना-घटने लगी तब उनके मन में एक अज्ञात भय समा गया।

मैंने उनसे कहा—'यह सब मन का वहम है। आज मैं तुम्हारे कमरे में बारह बजे के पहले सोने आ जाऊँगा।'

रात में लगभग पौने बारह बजे मैं अपने मित्र के कमरे में भीतरी दरवाजे से गया। वे मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। हम लोगों की निगाहें घड़ी की सुई पर थीं। तभी

यह अप्रत्याशित घटना घटी । ठीक बारह बजे रात, कमरे की अंदरूनी छत के मध्य भाग से जहाँ अभी भी बिजली का पुराना उपकरण लगा हुआ था (जो इंगित करता था कभी यहाँ सीलिंग फैन टँगा होगा) जोर से खट-खट की आवाज आई जो कोई भ्रम नहीं था । मेरे मित्र ने तुरन्त अपने मुँह पर रजाई डाल ली और हनुमान चालीसा का पाठ करने लगे जो उन्हें जबानी याद था । 'जय हनुमान ज्ञान गुन सागर....।' विस्मित मैं भी हुआ किंतु मुझे भय की अनुभूति नहीं हुई । इतना स्पष्ट था कि कोई अदृश्य अतृप्त आत्मा अपनी उपस्थिति का बोध कराना चाहती है । मैंने उसी अदृश्य आत्मा को संबोधित करते हुए जोर से कहा, 'आपकी उपस्थिति का हम दोनों को बोध हैं । हम ईश्वर से प्रार्थना करेंगे कि आपको शांति प्रदान करें ।' और फिर मैं सामान्य निद्रा में सो गया, बिना किसी भय के, बिना किसी आशंका के ।

सबेरे हम दोनों ने अपनी पूजा में उस अतृप्त आत्मा को शांति देने के लिए प्रभु से प्रार्थना की । रात में हम दोनों फिर साथ-साथ उसी कमरे में सोये । रात के बारह बजे की प्रतीक्षा करते रहे । पर बारह बजने पर कोई आवाज नहीं हुई । लगता है हम दोनों की प्रार्थना प्रभु ने सुन ली और वह आत्मा तृप्त हो गयी ।

मैंने अपने मित्र को समझाया—'हम लोग जो न्यायिक सेवा के हैं, सामान्यत: स्वभाव से ही संत प्रकृति के होते हैं । जैसे प्यासा आदमी किसी जलाशय की तलाश करता है, जहाँ वह अपनी प्यास बुझा सके । उसी तरह ये प्यासी आत्माएँ अपनी शान्ति के लिए ऐसे लोगों की तलाश में रहती हैं जो उनके लिए प्रभु से प्रार्थना कर सकें। प्रार्थना सुनना, न सुनना तो प्रभु के हाथ में है । लगता है, हम लोगों की नि:स्वार्थ प्रार्थना प्रभु ने सुन ली और प्यासी आत्मा तृप्त हो गयी ।'

*

जीवन और मृत्यु का संधि-स्थल

कुछ क्षणों का अंतराल जीवन को मृत्यु में परिवर्तित कर सकता है और इन्हीं कुछ क्षणों का अंतराल निश्चित मृत्यु को टाल जीवन की निरंतरता बनाए रख सकता है। बात केंवल कुछ क्षणों की होती है और यही क्षण जीवन और मृत्यु के संधि-स्थल पर परिक्रमा लगाते दैवी क्षण होते हैं। केवल पाँच मिनट के अंतराल से निश्चित मृत्यु टल सकती है और जीवन की निरन्तरता का क्रम नियत अवधि तक बना रहा सकता है अन्यथा इस पाँच मिनट या इससे भी कम समय को खोकर व्यक्ति उस देश में चला जाता है जहाँ से लौटकर फिर कभी नहीं आ पाता है।

सन् 1992 में मैं एक अत्यन्त ख्यातिप्राप्त आँख के अस्पताल में आँख के मोतियाबिंद का ऑपरेशन कराने गया था। जनपद और अस्पताल के नाम को मैं अभिलेख में नहीं ला रहा हूँ। वह अस्पताल आज भी अत्यन्त सम्मानित अस्पताल है। जो कुछ घटित हुआ उसके लिए वहाँ के मुख्य चिकित्सा अधिकारी केवल अपनी नैतिक जिम्मेदारी मान सकते हैं, ठीक उसी तरह जैसे एक ट्रेन दुर्घटना के संदर्भ में लालबहादुर शास्त्री ने रेलमंत्री के पद से नैतिक आधार पर त्यागपत्र दे दिया था। अन्यथा अस्पताल के मुख्य चिकित्सां अधिकारी को किसी भी प्रकार से इस घटना का जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। मैं व्यक्तिगत रूप इसे दैवी क्षणों की वह परिक्रमा मानता हूँ जो जीवन और मृत्यु के संधिस्थल पर किसी ईश्वरीय विधान के अधीन चलती रहती हैं।

भरती होने के लिए अस्पताल के परिसर में मैं परिवार के साथ लगभग 12 बजे दिन में पहुँच गया। भरती होने के सम्बन्ध में औपचारिक अनुमति पहले ही मिल चुकी थी। मेरे आने की सूचना अस्पताल की व्यवस्था को जब मेरे अस्पताल पहुँचने पर प्राप्त हुई, अस्पताल की व्यवस्था ने संदेश भिजवाया कि मैं अभी कुछ देर बाहर ही रहूँ जब तक मेरे लिए आवंटित स्पेशल वार्ड की धुलाई, सफाई नहीं हो जाती।

गर्मी के दिन थे। अस्पताल के परिसर में एक हैंडपंप लगा हुआ था जिसकी टोटी पर एक गाय अपनी जीभ से पानी की बूँदें चाट रही थी। मैं खाली बैठा था। उठकर हैंडपंप तक गया और हैंडपंप चलाने लगा। टोटी से गिरते हुए जल से गाय अपनी प्यास बुझाने लगी। लगता था कि गाय बहुत प्यासी थी। लगभग 10 मिनट जल पीने के बाद ही वह हैंडपंप से हटी और समीप की घास चरने लगी।

थोड़ी देर बाद वार्ड की सफाई समाप्त हुई और हमलोग वार्ड में गये। वार्ड एक पुराना हालनुमा कमरा था जिसकी छत काफी ऊँची थी। इसके आधे भाग में

बीच में कुछ दूर तक पर्दे जैसी दीवाल उठी हुई थी। इस पर्दे की दीवाल की एक तरफ मरीज के सोने के लिए छत से लटक रहे पंखे के ठीक नीचे बेड था। कमरे के दूसरे भाग में (पर्दे की दीवाल की दूसरी ओर) दो बेड मरीज की तीमारदारी में आये परिवार के सदस्यों के लिए लगे थे। मरीज के तीमारदारों के बेड के ऊपर छत से नया पंखा लटक रहा था। मरीज के बेड के ऊपर जो पंखा लटक रहा था, वह बहुत पुराने मॉडल का था और देखने में काफी भारी लगता था। नये पंखे से इस माने में यह भिन्न पंखा था कि पंखे के निचले मध्य केन्द्र में भालानुमा लगभग छह इंच लम्बी छड़ का अलंकरण था जैसा पुराने पंखों में होता था। दूसरे भाग में जो नया पंखा लटक रहा था (साथ में आए तीमारदारों के लिए) वह सामान्य पंखे जैसा था, जिसमें हल्का-फुल्कापन तो था ही, साथ में पंखे के केन्द्र पर सपाटपन था जैसा आजकल के पंखों में देखा जा सकता है। इसी स्पेशल वार्ड के साथ भीतरी बरामदा, रसोईघर, आँगन और बाथरूम आदि था। इस स्पेशल वार्ड का प्रयोग अब मरीजों की भरती के सन्दर्भ में सामान्य तौर पर नहीं होता था। अस्पताल में नवनियुक्त चिकित्सक को यह स्पेशल वार्ड कुछ समय के लिए उपलब्ध करा दिया जाता था जब तक उसके लायक उचित आवास उपलब्ध नहीं हो जाता था।

वह स्पेशल वार्ड खाली पड़े रहने की दशा में कभी-कभी भरती हेतु मरीज को भी आवंटित हो जाता था। मुझे भी संयोग से यही स्पेशल वार्ड भरती होने के लिए आवंटित हुआ था।

दिन तो चिकित्सकीय औपचारिकताओं में गुजर गया। सब कुछ ठीक पाकर ऑपरेशन अगले दिन के लिए निश्चित हुआ। रात में सोने के लिए मैं मरीज वाले बेड पर लेटा। बेड के ठीक ऊपर छत से वह भारी पंखा लटक रहा था जो हवा कम दे रहा था, शोर ज्यादा कर रहा था। रात को लगभग 1 बजे मेरी आँख खुली जब पंखे के चलने के कारण बेड के ऊपर छत से कुछ चूना झरकर मेरे चेहरे पर रुक-रुककर गिरने लगा। इतनी रात गये क्या हो सकता है—यह सोचकर मैंने मुँह पर चादर ओढ़ ली। रात के लगभग सवा बजे मन में यह विचार आया कि नींद में चादर मुँह से उतर जाएगी और ऊपर से झर रहे चूने का अगर कोई भी कण आँख में पड़ गया तो फिर आँख की लाली देखकर सर्जन आँख का ऑपरेशन दो-तीन दिन के लिए टाल देगा जिससे आँख पुनः सामान्य हो जाए। तब इतनी रात आखिर क्या किया जाए ?

इसी ऊहापोह में पन्द्रह मिनट और बीत गये। इसी बीच मैंने यह हल निकाला कि कम्पाउण्डर वाला ड्रेसिंग रूम तो बगल ही में है। वहाँ कोई न कोई जरूर होगा। उसी से कहूँगा कि मेरी आँख पर पट्टी बाँध दे जिससे चूने का कोई कण मेरे सोने के दौरान आँख में न पड़ जाए और वह फिर मुझे मेरे वार्ड तक पहुँचा दे। यह हल मुझे व्यावहारिक लगा। मध्यरात्रि के लगभग डेढ़ बजे मैं अपनी बेड से उठा—अपने

कमरे का बाहरी दरवाजा खोला और बगल में ही स्थित ड्रेसिंग रूम को जब मेरे दस्तक पर भीतर से किसी ने नहीं खोला तब मैंने वार्ड में लौट जाना ही ठीक समझा। अब तो उचित व्यवस्था सुबह होने पर ही हो सकेगी।

अपने वार्ड से ड्रेसिंग रूम तक जाने में और फिर ड्रेसिंग रूम के भीतर से बंद होने के कारण अपने वार्ड तक वापस आने में कुल पाँच मिनट लगे होंगे। इन्हीं चार-पाँच मिनट की अवधि में वह भारी-भरकम पंखा हाल की ऊँची छत से ठीक बेड पर गिर पड़ा। जब मैं कमरे में दाखिल हुआ तो पंखा मेरे बेड के ठीक मध्य में गिरा हुआ था। पंखे के मध्य में नीचे की ओर लगा लोहे के छड़ जैसा अलंकरण बेड के बिस्तर को बेधता हुआ बेड के नीचे तक निकल गया था।

इस घटना से काफी शोर-शराबा मचा। व्यवस्था से जुड़े अन्य लोगों के साथ मुख्य चिकित्सा अधिकारी भी आए। उन्होंने मेरे सामने बड़ी शर्मिंदगी जाहिर की। मैंने उनसे आभार प्रकट किया—'यह आपका एकबाल था जिससे मेरी रक्षा हो गयी ताकि आप पर या अस्पताल पर कोई अपयश न आए।'

सुबह होने पर बहुत से लोग आए और जैसा ऐसे अवसर पर सामान्य तौर पर कहा जाता है, कुछ लोगों ने कहा—'आपके किसी पुण्य से आपकी रक्षा हुई और निश्चित मृत्यु टल गयी।'

उनके जाने पर मैंने विचार किया कि कोई ऐसा खास पुण्य का काम तो किया नहीं। हाँ, इतनी बात जरूर याद आई कि भरती होने के ठीक पहले मैंने एक प्यासी गाय की प्यास बुझाने के लिए कुछ देर अस्पताल का हैंडपंप चलाया था।

*

मृतक द्वारा पत्नी को कफ़न

बात कुछ समझ में आसानी से नहीं आती है । किन्तु ऐसा लगता है जैसे हमारे वर्तमान के साथ अतीत का संसार भी है और इससे भी जो अधिक अचरज की बात सुनने में लगती है वह है अतीत और वर्तमान के साथ-साथ चल रहे भविष्य का अस्तित्व ।

महात्माओं के चरणों में बैठकर कुछ सीखने की चाह हममें से हर एक को होती है—मुझे भी थी । ऐसे ही एक सिद्ध महात्मा अपने नगर वाराणसी में ही गंगा-तट पर रहते थे जिनके चरणों की छाँव में, मैं कभी-कभी जाकर बैठता था । इंतजार करता था कि कब उनकी श्रीवाणी से कुछ सुनने को मिले । और एक रोज उन्होंने कहा—"कौन इसे मानेगा ? किंतु प्रत्येक प्राणी एक साथ ही जन्म भी ले रहा है और मृत्यु को भी प्राप्त हो रहा है ।'

मैं महात्माजी की श्रीवाणी सुनकर विस्मित हो गया । ऐसा कैसे हो सकता है कि प्राणी एक ही समय जन्म ले रहा है और मृत्यु को भी प्राप्त हो रहा है । फिर जो गुजर गया (अतीत)—जो चल रहा है (वर्तमान) और जो आगे जाकर होने वाला है (भविष्य); इन सबका एक साथ चलने का बौद्धिक सामंजस्य कैसे बैठाया जा सकता है ?

और फिर मैंने जब एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्टीफेन हॉकिंग की पुस्तक 'समय का इतिहास' का अनुशीलन किया, तब मुझे लगा, जिस तथ्य को अति श्रेष्ठ वैज्ञानिक आज प्रस्तुत कर रहे हैं, उसे और इससे भी गूढ़ रहस्यों को हमारे मनीषी किस सहजता से जान लेते थे । वे प्रकृति के अति गूढ़ रहस्यों को इतनी सहजता से कैसे जान लेते थे जबकि विज्ञान की कोई उपलब्ध पुस्तक (प्राच्य या प्रतीची) उनके समक्ष नहीं रहती थी—वह ज्ञान जो मानव-मस्तिष्क में सदियों की यात्रा के पश्चात् अवधारित हुआ और जिसकी अवधारणा में एक से एक बढ़कर वैज्ञानिकों ने संयुक्त रूप से शोध-कार्य किया तथा अति आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों का सहारा लिया ? अधुना अर्थ में न तो हमारे मनीषी वैज्ञानिक वर्ग में आते थे न धर्मग्रन्थों की उपलब्ध पुस्तकों को विज्ञान की पुस्तकों के वर्ग में उस अर्थ में रखा जा सकता था जिस अर्थ में आज हम किसी पुस्तक को विज्ञान की पुस्तक होने की मान्यता देते हैं ।

वास्तव में हम जिस बुद्धि या बौद्धिक समाधान की बात करते हैं उसे हम भले ही श्रेष्ठता का ज़ामा पहना दें और सभी समस्याओं के समाधान की कसौटी बना दें;

किन्तु यह बुद्धि की कसौटी अनेक बार असफल रही है । इसका तो अति आधुनिक उदाहरण सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटाइन के सापेक्षवादिता का सिद्धान्त (थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी) है जिसे एक जमाने में बौद्धिक प्रखरता का प्रखरतम शिखर माना जाता था—उसी पर आज सवालिया निशान लगाये जा रहे हैं ।

मैं बहुचर्चित पुस्तक 'समय का इतिहास' की बात कर रहा था । इसने वही बात कही ज़ो मैंने अपने परम आदरणीय मनीषी के चरणों में बैठकर सुनी और सुनकर विस्मित हुआ । प्रत्येक व्यक्ति एक ही समय जन्म भी ले रहा है और मृत भी हो रहा है ।

'समय का इतिहास' के वैज्ञानिक लेखक ने आखिर कहा क्या ? उनका कहना था—एक बहुत लंबी रेल की पटरी की कल्पना कीजिये जिस पर तीन स्टेशन अपेक्षित अंतराल पर स्थित हैं एक भूत, एक वर्तमान और एक भविष्य । रेल-यात्री को भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल में पृथकता दिखलाई पड़ती है और समय के अंतराल का बोध होता है । जैसे भूतकाल के स्टेशन पर खड़ी रेलगाड़ी के यात्री को वह काल वर्तमान प्रतीत होगा । और जब गाड़ी आगे बढ़ी तो आने वाला स्टेशन भले ही यात्रा के आरम्भ में भविष्य का रूप लिये था; वह गाड़ी पहुँचने पर यात्री को वर्तमान के रूप में प्रस्तुत होगा और जो पहले वर्तमान था वह अतीत या भूतकाल बन चुका होगा । गाड़ी फिर जब आगे बढ़ेगी तब उस समय भी आगे आने वाला स्टेशन वहाँ स्थित है जहाँ गाड़ी पँहुचेगी । गाड़ी जब इस भविष्य के स्टेशन पर पहुँचेगी तब रेलगाड़ी के लिए यही भविष्य का स्टेशन वर्तमान बन जायेगा और जिस पिछले स्टेशन को वह वर्तमान समझ रहा था वह उसके लिए अतीत या भूतकाल बन जायेगा ।

अब अगर अंतरिक्ष से कोई व्यक्ति नीचे दृष्टिपात करे तो उसे भूत-वर्तमान और भविष्य के तीनों स्टेशन एक साथ ही दिखलाई पड़ेंगे । अंतरिक्ष से नीचे देख रहे यात्री को अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों ही एक साथ दृष्टिगत होंगे । वह उस अतीत को भी देखेगा जिसमें किसी व्यक्ति ने जन्म लिया । वह उस वर्तमान को भी देखेगा जिसमें उस व्यक्ति ने बड़े होकर पुरुषार्थ किया, वैवाहिक जीवन व्यतीत किया—बच्चों का पिता और पितामह बना तथा उस भविष्य को भी देखेगा जिसमें उस व्यक्ति की चिता धू-धू कर जल रही है । है न यह हैरत में किसी की भी बुद्धि को डाल देने वाली बात ? और उससे भी हैरतअंगेज बात यह है कि बिना श्रेष्ठ वैज्ञानिकों के सहयोग के—बिना श्रेष्ठ वैज्ञानिक शोध के पुस्तकों की सहायता के, बिना विज्ञान के आधुनिक उपकरणों के, हमारे मनीषी सहजता से प्रकृति के एक परम गूढ़ रहस्य का बोध कैसे कर लेते थे जिस नतीजे पर पहुँचने में विज्ञान ने सदियाँ गुजार दीं ।

और इसका एक ही उत्तर है । हमारे भारतीय दर्शन के अनुसार जीव स्वयं ईश्वरमय है—ईश्वर का अंश है । ईश्वर का अंश होने के कारण, ईश्वरमय होने के

कारण उसे सब कुछ उसी सहजता से प्राप्य है जैसे साक्षात् परम पिता को प्राप्त है। किसी भी धर्म में यह प्रश्न नहीं उठाया गया और न किसी भक्त ने परमात्मा से पूछा— "हे प्रभु ! आपको यह ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ जिस ज्ञान के सागर के आगे विश्व भर का सामूहिक ज्ञान, मात्र ज्ञान की कुछ बूँदें हैं" इसीलिये हमारे मनीषी प्रकृति के परम गूढ़ रहस्यों को सहजता से ही जान गये।

अवधारणा यह है कि भूत, वर्तमान और भविष्य जो एक साथ घटित हो रहे हैं, उनमें किसी काल का कोई भी व्यक्ति यदि 'समय यंत्र' 'टाइम मशीन' (जिसकी कल्पना अभी वैज्ञानिक उपन्यास में ही आयी है और उसका अविष्कार नहीं हुआ है) सरीखे किसी संभाव्य उपकरण की सहायता से पिछले स्टेशन पहुँच सके या अगले स्टेशन पहुँच पाये; या फिर जिसे हम भविष्य काल कहते हैं उस काल का कोई पात्र वर्तमान काल में छलाँग लगा सके तब उसे वह सब कुछ दिखलाई पड़ेगा जो उसके पहुँचने के समय उस कालविशेष में घटित हो रहा है। इसी को कभी-कभी समानान्तर संसार भी कहा जाता है।

'समय का इतिहास' के लेखक उन परम श्रेष्ठ वैज्ञानिक ने इसी प्रसंग को लेकर यह सवाल उठाया जो रोचक भी है और संभावनाओं को देखते हुए खतरनाक भी। उन्होंने पूछा कि मान लीजिये आप उस 'टाइम मशीन', 'समय यंत्र' से या किसी संभाव्य वैज्ञानिक उपकरण की सहायता से वर्तमान से भूतकाल में चले गये और वहाँ पर उस वर्ष पहुँचे जब आपके पितामह आठ वर्ष के बालक के रूप में खेल रहे हैं। अभी वे बड़े होंगे, कार्यरत होंगे, विवाह करेंगे, पुत्र-पौत्र उनकी गोद में खेलेंगे और फिर पूर्ण आयु पाने पर चिता को भेंट कर दिये जायेंगे। ऐसे पितामह को उनके बचपन में आपने ही अपने वर्तमान से अतीत की ओर छलाँग लगाकर देख लिया। किन्तु यदि आपने उनकी हत्या कर दी (जब वे मात्र आठ वर्ष के बालक थे) और उस आठ वर्ष के बालक का प्राणांत हो गया; तब वह न तो किशोर बन पायेगा न युवा और न विवाह कर पायेगा क्योंकि उसकी जीवन-लीला तो उसके आठवें वर्ष में आपने भूतकाल में छलाँग लगाकर समाप्त कर दी तो फिर आपका क्या हाल होगा ? आपके पितामह की हत्या उनके आठवें वर्ष में यदि आपने भूतकाल में छलाँग लगाकर न की होती, तब अपेक्षित समय बीतने पर आपके पितामह विवाह करते और आपके पिता को जन्म देते और फिर आपके पिता बड़े होकर विवाह करते और आपको जन्म देते। और फिर आप बड़े होकर वर्तमान के उस बिन्दु पर पहुँचते जहाँ से आपने भूतकाल में छलाँग लगाई और अपने पितामह की हत्या उनके आठवें वर्ष में कर दी जब वे बालक-रूप में खेल रहे थे।

उन वैज्ञानिक के पास जो उत्तर हैं उसे समुचित समाधान नहीं कहा जा सकता। उनके अनुसार आपका भूतकाल में जाना सम्भव था, अपने पितामह को उनके बालरूप में देख लेना संभव था जब वे अपनी आठ वर्ष की अवस्था में घर के आँगन

में खेल रहे थे। किंतु आपके लिए उनकी हत्या करना सम्भव नहीं है क्योंकि यदि आपका ऐसा इरादा है तो आपको फिर भूतकाल में छलाँग लगाने में प्रकृति सहायक नहीं होगी। पहले वह इत्मीनान कर लेगी कि कहीं आप इस प्रकार के इरादे वाले व्यक्ति तो नहीं हैं। और इस सिलसिले में आपका पहले का भी इतिहास देखेगी। अब इस पर ज्यादा नहीं कहूँगा सिवाय इसके कि यह उठाये गये सवाल का समुचित समाधान प्रतीत नहीं होता। किन्तु उनके समाधान में यह तो ध्वनित है कि ऐसे कृत्य वर्जित हैं जो भविष्य की ओर बढ़ रहे जीवन के इतिहास की नैसर्गिक गति को अवरुद्ध कर दें। हाँ, ऐसे काम आप कर सकते हैं जिनसे भविष्य की नैसर्गिक गति में कोई अवरोध उत्पन्न नहीं होता है।

इतनी लंबी भूमिका एक छोटी-सी घटना लिखने के पूर्व आवश्यक पड़ गई अन्यथा आप मेरी बात पर विश्वास ही नहीं करते और एक सहज सवाल उठाते, 'ऐसा क्या हो सकता है ?' अब जो बात कहने जा रहा हूँ उस बात को लगभग पचास वर्ष बीत चुके हैं। इसी बनारस नगर में, मेरी निकट की रिश्तेदारी में घर के बुजुर्ग का देहावसान हुआ। उनकी शवयात्रा में मैं भी शामिल हुआ। इसके कुछ वर्ष पश्चात् उनकी रुग्णा पत्नी के देहावसान का समाचार मिलने पर अपने घर से मैं भी मिट्टी में शरीक होने के लिए वहाँ पहुँचा। उनका शव घर के आँगन में लिटाया गया था और पूरे शरीर पर चादर डाल दी गयी थी। आँगन से सटे बरामदे में कुर्सी पर बैठा मैं भी शोकमग्न था और उन आदरणीया वृद्धा के शव को देख रहा था। परिवार में रोना-पीटना मचा हुआ था।

तभी मुझे दिखलाई पड़ा, आँगन की दूसरी तरफ की दीवाल के बीच से दिवंगता के पति हाथ में कफ़न का वस्त्र लिए आँगन की ओर बढ़े। ऐसा लगता था कि उस दीवाल के पीछे जो पूजा का कमरा था, उसी में उन्होंने यह वस्त्र रखा था। उसे ही लेकर दीवाल के मध्य से वे निकले, जैसे दीवाल के मध्य में कोई दरवाजा हो। यह सब मुझे उस समय सहज और स्वाभाविक प्रतीत हुआ।

उन्होंने दिवंगता पत्नी के सिरहाने चादर के नीचे उस कफ़न के वस्त्र को रखा और फिर उसी रास्ते से वापस पूजा के कमरे में चले गये। मुझे लगा कि यह बड़ा अच्छा हुआ, दिवंगता को उनके पति के हाथ से कफ़न मिल गया। उस समय ध्यान ही नहीं आया कि जिस दीवाल के मध्य से दिवंगत पति भीतरी कमरे से बाहर आये उस दीवाल में आँगन की ओर कोई दरवाजा ही नहीं था। यह भी नहीं ध्यान आया कि दिवंगता को जिन पति के हाथों कफ़न का वस्त्र मिला वे पति तो कुछ वर्ष पूर्व दिवंगत हो चुके थे। एक अर्ध तन्द्रा जैसी स्थिति में मैंने सब कुछ देखा था और इसे पूर्णतया सहज और स्वाभाविक माना था।

थोड़ी देर बाद मुझे बोध हुआ कि दिवंगता के पति को तो दिवंगत हुए कुछ वर्ष गुजर चुके हैं। और उनकी शव-यात्रा में मैं भी मणिकर्णिका गया था। तभी मैंने

चेतन होकर यह भी देखा कि जिस कमरे की दीवाल के मध्य से होकर कफन का वस्त्र लिये वे बाहर निकले थे, उस कमरे का कोई दरवाजा आँगन की ओर नहीं खुलता था। उसका प्रवेश द्वार तो भीतरी बरामदे में था।

दिवंगता की शव-यात्रा में मैं भी शरीक हुआ। अनेक वर्ष बीत जाने पर उस परिवार के एक सदस्य (जो इस समय भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ सदस्य हैं) से मैंने इस सारी घटना का उल्लेख किया था। वे मुझमें सहज आस्था रखते हैं। उन्होंने मेरी बात पर पूरा विश्वास किया। उस समय दोनों के ही पास समाधान के सन्दर्भ में केवल विस्मिति थी; कोई समाधान नहीं था।

इस आशा से लेख का समापन कर रहा हूँ कि अध्यात्म के जटिल और गूढ़ रहस्यों को समझने के निमित्त हम सभी अपने मनीषियों के चरण-चिह्नों पर चलने का प्रयास करेंगे। अपने भारतीय दर्शन की परम्परा को पुनः जीवंत बनायेंगे। अब विश्व भी मानता है—जहाँ विज्ञान का अंत है वहीं से अध्यात्म की शुरुआत है।

*

अध्यात्म, योग एवं जीवन-चरित

मनीषी, संत, महात्मा

तुकाराम गाथा	*अनु० ना० वि० सप्रे*
काशी के विद्यारत्न संन्यासी	*पं० बलदेव उपाध्याय*
श्री श्री सिद्धिमाता	*राजबाला देवी*
योगिराज तैलंग स्वामी	*विश्वनाथ मुखर्जी*
ब्रह्मर्षि देवराहा-दर्शन	*डॉ० अर्जुन तिवारी*
प्रकाश-पथ का यात्री *(एक सिद्ध योगी की आत्मकथा)*	*योगेश्वर*
अघोर पंथ और संत कीनाराम	*डॉ० सुशीला मिश्र*
शिवस्वरूप बाबा हैड़ाखान	*सद्‌गुरुप्रसाद श्रीवास्तव*
करुणामूर्ति बुद्ध	*डॉ० गुणवन्त शाह*
महामानव महावीर	*डॉ० गुणवन्त शाह*
बाबा नीब करौरी के अलौकिक प्रसंग	*बच्चन सिंह*
नीब करौरी के बाबा	*डॉ० बदरीनाथ कपूर*
सोमबारी महाराज *(उत्तराखण्ड की अनन्य विभूति)*	*हरिश्चन्द्र मिश्र*
सन्त रैदास	*श्रीमती पद्मावती झुनझुनवाला*
रैदास परिचई	*डॉ० शुकदेव सिंह*
संत रज्जब	*डॉ० नन्दकिशोर पाण्डेय*
समर्थ रामदास	*ना०वि० सप्रे*
स्वामी दयानन्द जीवनगाथा	*डॉ० भवानीलाल भारतीय*
तथागत (आत्मकथात्मक उपन्यास)	*डॉ० बाबूराम त्रिपाठी*
मनीषी की लोकयात्रा (म०म०पं० गोपीनाथ कविराजका जीवन-दर्शन)	*डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह*
योगिराजाधिराज श्री श्री विशुद्धानन्द परमहंस	*अक्षयकुमारदत्त गुप्त कविरत्न*
सूर्य विज्ञान प्रणेता योगिराजाधिराज स्वामी विशुद्धानन्द परमहंसदेव : जीवन और दर्शन	*नन्दलाल गुप्त*
Yogirajadhiraj Swami Vishuddhanand Paramhansdeva : Life & Philosophy	*Nand Lal Gupta*
योगिराज विशुद्धानन्द प्रसंग तथा तत्त्व कथा	*पं० गोपीनाथ कविराज*
ज्ञानगंज	*पं० गोपीनाथ कविराज*
पुराण पुरुष योगिराज श्रीश्यामाचरण लाहिड़ी	*सत्यचरण लाहिड़ी*
कौन हैं ये श्यामाचरण	*अशोककुमार चट्टोपाध्याय*
Purana Purusha Yogiraj Sri Shyama Charan Lahiree	*Dr. Ashok Kumar Chatterjee*
Satyacharan in the Abode of Truth	*Dr.Ashok Kr.Chatterjee*
योग एवं गृहस्थ योगी : योगीराज सत्यचरण लाहिड़ी	*शिवनारायण लाल*

योगी कथामृत	परमहंस योगानन्द
Autobiography of a Yogi	Paramhansa Yoganand
भारत के महान योगी (14 भाग : 7 जिल्द)	विश्वनाथ मुखर्जी
भारत की महान साधिकाएँ	विश्वनाथ मुखर्जी
महाराष्ट्र के संत-महात्मा	ना०वि० सप्रे
महाराष्ट्र के कर्मयोगी	ना०वि० सप्रे
आधुनिक भारत के युग प्रवर्तक संत	लक्ष्मी सक्सेना
उत्तराखण्ड की सन्त परम्परा	डॉ० गिरिराज शाह
पूर्वांचल के संत महात्मा	परागकुमार मोदी
भुड़कुड़ा की सन्त परम्परा	डॉ० इन्द्रदेव सिंह
गोरखनाथ : नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में	डॉ० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय
बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य	डॉ० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय

अध्यात्म, योग, तंत्र, दर्शन

रहस्यमय सिद्धभूमि तथा सूर्यविज्ञान	म०म०पं० गोपीनाथ कविराज
परलोक तत्त्व	भागर्व शिवरामकिंकर योगत्रयानन्द
तत्त्वजिज्ञासा	म०म०पं० गोपीनाथ कविराज
तत्त्वानुभूति	म०म०पं० गोपीनाथ कविराज
साधन पथ	म०म०पं० गोपीनाथ कविराज
मानव-तत्त्व तथा वर्ण विवेक	भागर्व शिवरामकिंकर योगत्रयानन्द
सृष्टि-तत्त्व तथा राजा एवं प्रजा	भार्गव शिवरामकिंकर योगत्रयानन्द
योग वासिष्ठ की सात कहानियाँ	भरत झुनझुनवाला
सौन्दर्यलहरी : तंत्र-दृष्टि और सौन्दर्य-सृष्टि	प्रभुदयाल मिश्र
कुण्डलिनी शक्तियोग तथा समाधि एवं मोक्ष	डॉ० दिनेशकुमार अग्रवाल
स्वर से समाधि	स्वामी कृष्णानन्दजी 'महाराज'
यंत्र-मंत्र रहस्य	स्वामी कृष्णानन्दजी 'महाराज'
गङ्गा : पावन गङ्गा	डॉ० शुकदेव सिंह
रावण की सत्यकथा	रामनगीना सिंह
दिव्य प्रतीक	प्रो० कल्याणमल लोढ़ा
वाग्दोह	प्रो० कल्याणमल लोढ़ा
बृहत श्लोक संग्रह (सर्वधर्म सार)	प्रो० कल्याणमल लोढ़ा
सोमतत्त्व	सं० : प्रो० कल्याणमल लोढ़ा
गुप्त भारत की खोज	पाल ब्रंटन
हिन्दू षड्दर्शन	स्वामी श्री प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती
जपसूत्रम् (प्रथम खण्ड व द्वितीय खण्ड)	स्वामी श्री प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती
वेद व विज्ञान	स्वामी श्री प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती
वेदान्त और आइन्सटीन	अनिल भटनागर

हिन्दी ज्ञानेश्वरी	(अनु०) ना०वि० सप्रे
श्रीमद् एकनाथी भागवत	अनु० : ना०वि० सप्रे
श्रीकृष्ण : कर्म-दर्शन (अद्भुत लीला प्रसंग)	शारदाप्रसाद सिंह
कथा राम कै गूढ़	डॉ० रामचन्द्र तिवारी
कथा त्रिदेव की	रामनगीना सिंह
सृष्टि और उसका प्रयोजन (मेहेर बाबा)	शिवेन्द्र सहाय
सब कुछ और कुछ नहीं	मेहेर बाबा
कृष्ण का जीवन संगीत (गीता)	डॉ० गुणवंत शाह
श्रीमद्भगवद्गीता (क्रियायोग पर आधारित व्याख्या)	योगाचार्य पण्डित पञ्चानन भट्टाचार्य
श्रीमद्भगवद्गीता (3 खण्डों में)	श्री श्यामाचरण लाहिड़ी
विल्वदल (दो खण्डों में)	भूपेन्द्रनाथ सान्याल
आश्रम चतुष्टय	भूपेन्द्रनाथ सान्याल
प्राणमयं जगत	अशोककुमार चट्टोपाध्याय
श्यामाचरण क्रियायोग व अद्वैतवाद	अशोककुमार चट्टोपाध्याय
KRIYA YOGA : From Centrifugal Ideas to Centripetal Insight	*Shibendu Lahiri*
अनंत की ओर	अशोककुमार
गोपीगीत (दार्शनिक विवेचन)	करपात्रीजी महाराज
भ्रमर-गीत	करपात्रीजी महाराज
वक्रेश्वर की भैरवी	अरुणकुमार शर्मा
तिब्बत की वह रहस्यमयी घाटी	अरुणकुमार शर्मा
मृतात्माओं से सम्पर्क	अरुणकुमार शर्मा
वह रहस्यमय कापालिक मठ	अरुणकुमार शर्मा

म०म०पं० गोपीनाथ कविराज की अध्यात्मकपरक कृतियाँ

- भारतीय धर्म साधना
- क्रम-साधना
- अखण्ड महायोग
- श्री साधना
- श्रीकृष्ण प्रसंग
- योगिराज विशुद्धानन्द प्रसंग तथा तत्त्व कथा
- शक्ति का जागरण और कुण्डलिनी दीक्षा
- सनातन-साधना की गुप्तधारा
- साधु दर्शन एवं सत्प्रसंग (भाग1, 2, 3 व 4)
- ज्ञानगंज
- प्रज्ञान तथा क्रमपथ
- योग-तन्त्र साधना
- परातंत्र साधना पथ
- तन्त्र और आगम शास्त्रों का दिग्दर्शन
- भारतीय संस्कृति और साधना (भाग-1 व 2)
- अखण्ड महायोग का पथ और मृत्यु विज्ञान
- काशी की सारस्वत साधना
- भारतीय साधना की धारा
- स्वसंवेदन
- तांत्रिक वांङ्मय में शाक्त दृष्टि
- तांत्रिक साधना और सिद्धान्त

गोविंद प्रसाद श्रीवास्तव

जन्म : 3 जनवरी 1931, वाराणसी

माता-पिता : श्रीमती नारायणी देवी, श्री राजनन्दन लाल

पत्नी : श्रीमती प्रेम कुमारी श्रीवास्तव

शिक्षा : क्वींस कालेज, वाराणसी : इण्टरमीडिएट तक, प्रयाग विश्वविद्यालय : बी०ए० और एल-एल०बी०, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय : एम०ए० (हिन्दी), एम०ए० (इतिहास)

न्याय सेवा : 1957 से 1989 की अवधि में उत्तर प्रदेश की न्याय-सेवा में सेवारत। अनेक जनपदों में जिला जज के रूप में कार्य करने का अवसर।

प्रकाशित : (1) उमर खैय्याम की रूबाइयाँ (2) हिन्दी में समस्या-नाटक (3) विधि शब्दावली (4) सम्मानित हिन्दी एवं अंग्रेजी के दैनिकों में साहित्यिक, विधिक एवं महत्त्वपूर्ण विषयों पर अनेक शोधपूर्ण लेख।

- कवि, साहित्यकार एवं विधि व्याख्याता।
- लेखन : साहित्य, अध्यात्म तथा विधि क्षेत्र ।
- प्रमुख दैनिक के स्तम्भकार।
- उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा उत्कृष्ट कार्य तथा साहित्यिक एवं सांस्कृतिक योगदान के लिए सम्मानित।
- आवास : 'राजनन्दन', सी० 24/4, कबीरचौरा, वाराणसी

विश्वविद्यालय प्रकाशन
पो०बॉ० 1149, विशालाक्षी भवन,
चौक, वाराणसी - 221001
Phone & Fax : (0542) 2413741, 2413082
e-mail : sales@vvpbooks.com

₹ 60.00
ISBN:978-81-7124-802-5
9 788171 248025
www.vvpbooks.com